॥ श्रीशङ्कराय नमः ॥





शङ्कर-विजय

(भगवान् शङ्कराचार्यकी मर्त्यलीला)

(धर्ममूलक नाटक)

"साक्षात्-व्यासो नारायणो हरिः"

जिसको

स्वर्गीय-सनातनधर्मपताका सम्पादक-

(ऋषिकुमार)

रामस्वरूपशर्मा द्वारा

सङ्कलित

और

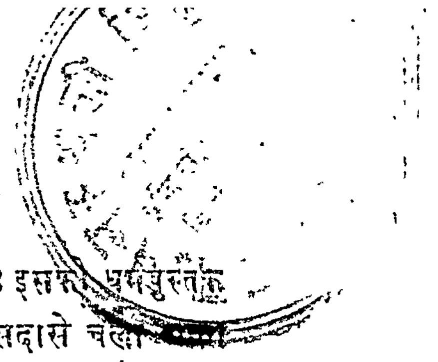
रामचन्द्रशर्मा ने

सनातनधर्म प्रेस

मुरादाबादमें छाप कर प्रकाशित किया

मूल्य १) रुपया

सम्वत् १९८४



भूमिका

यह शंकर-विजय धर्ममूलक नाटक है, अतः इसको धर्मपुस्तक भी कह सकते हैं, धर्मविषयमें सम्प्रदायभेद सदासे चला आता है, इस कारण इसके साथ सब सम्प्रदायवालोंकी पूरी २ सहानुभूति नहीं होगी, इस बातको जानते हैं। तथापि हम हिन्दू-शास्त्रके दास हैं, अथवा योगसिद्ध त्रिकालज्ञ महात्मा पुरुषोंके वाक्य पर अटल विश्वास रखना ही हमारा धर्म है, इसके प्रतिकूल अपना मतामत प्रकाश करनेको हम अनुचित समझते हैं।

इस पुस्तकमें ऐसी कितनी ही घटना हैं कि-जिनपर आजकलके अनेकों नवशिक्षितोंका तो कभी विश्वास हो ही नहीं सकता, कदाचित् वह उलटा उपहास करेंगे। परन्तु यहाँ कर्तव्यके अनुरोधसे कहना पड़ता है कि-यह पुस्तक ऐसे पाठकोंके लिये नहीं लिखागया है, किन्तु जो वास्तविक हिंदू हैं, जिनके रोम २ में विश्वास भराहुआ है; उनके समीप हमारा सविनय निवेदन है कि-वह ज्ञानमार्गकी चरमसीमाको पहुँचे हुए वेदान्त-सिद्ध-अद्वैतवादी-साधक चूड़ामणि भगवान् शंकराचार्यजीके इस संक्षिप्त जीवन चरितको जरा भक्तिके साथ पढ़ें। अधिक क्या कहें-जो घोर नास्तिकता और बौद्ध आदि वेदविरोधी धर्मोंसे सनातनवैदिकधर्मकी रक्षा करनेके लिये साक्षात् त्रिशूलधारी [illegible] शंकराचार्य रूपसे मृत्युलोकमें अवतीर्ण हुए थे, जिन [illegible]पक ईश्वरीय यत्नने एक दिन धर्महीन अधोगतभारत [illegible] नया जन्म दिया था। जिनके अलौकिक संन्यास अखण्डनीय युक्तियें-सारभरे उपदेश और अद्भुत कार्यकलापोंसे एक दिन सुदूर हिमालयसे कन्याकुमारी पर्यन्त सकल धर्ममण्डलमें कोलाहल मचगया था, जिनके अनन्त बुद्धिकी शक्तिमय मस्तिष्कसे सैंकड़ो धर्मग्रंथ निकल कर अब भी हिन्दूपनकी रक्षा

करते हुए जगत् भरमें हिन्दुओंके मुखको उज्ज्वल कर रहे हैं, ऐसे महापुरुषके जीवनचरितकी आलोचना करनेके लिये किस विश्वासी हिन्दूकी वासना बलवती नहीं होगी ? । इस कारण मनमें साहस होता है कि-पुस्तक रचना भौंडी होने पर पाठक विरक्त नहीं होंगे । महात्माओंके चरितकी आलोचना करनेमें औरोंको तो क्या-परन्तु लेखकको भी बड़ा सुख मिलता है, ऐसे विश्वाससे ही आज इस पश्चिमी शिक्षाके अभिमानी हिन्दू-समाजके सामने ऐसे गम्भीर भाव भरे अतिकठिन विषयमें हस्त-क्षेप करनेका साहस किया है । इस जगत्में यशका मिलना दैवा-धीन है, अतः यशकी ओर ध्यान देकर किसी श्रेष्ठ विषयकी आलोचनासे हाथ खेंचलेना युक्तियुक्त नहीं है ।

इस पुस्तककी ऐतिहासिक भित्ति नवीन शिक्षाकी दृष्टिसे बड़ी अशक्त है अथवा यह कहना ही वृथा है,क्योंकि-ऐसे महान् जीवन के सब स्थलोंमें सामञ्जस्य बनाये रखना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। सदानन्द-आनंदगिरि-और विद्यारण्य (माधवाचार्य) इन् तीनोंने, श्रीशंकराचार्यजीके जीवनचरित्ररूप तीन ग्रन्थ लिखे हैं, इनमें आनंदगिरिका गद्यरूप ग्रन्थ बहुत बड़ा है और उसके देखने का हमको अवसर भी नहीं मिला, शेष दो पुस्तक देखनेमें आये इन दोनोंके लेखोंमें भी परस्पर बहुत भेद है, यहाँ तक कि श्री-शंकराचार्यजीका जन्म निवासस्थान और माता पिताका नाम भी जुदा २ ही लिखा है, जो कुछ हो, परन्तु ऐसी बातोंमें मत भेद होनेपर भी उनके जीवनकी सारभूत प्रधान २ आवश्यकीय बातें दोनों पुस्तकोंमें समान भावसे वर्णित हैं, इन ही दोनों पुस्तकोंके आधारपर तथा ब० पा० किर्लोस्करकी रचनाका सहारा लेकर इस पुस्तकको यथा शक्ति पाठकोंका रुचिकर बनाया है । यद्यपि नाटकमें गद्य और पद्य दोनोंका ही होना

उचित है, तथा श्रीशंकराचार्यजीसे अलौकिक व्यक्तियोंके मुख से हिन्दीमें तत्पश्चात् गद्यका मखमलमें टाटकी साँटकी समान कदापि पाठकोंको रुचिकर नहीं होसकता, अतएव पद्योंके समावेशकी इच्छा होनेपर भी इस विषयकी यथोचित पूर्तिसे पुस्तक वञ्चित ही रही है, हाँ अन्य पात्रोंके लिये कहीं २ पद्यका प्रवेश भी किया गया है इस पुस्तकमें श्रीशंकराचार्यजी और मण्डन मिश्रके शास्त्रार्थमें जो श्लोक आये हैं वह उनके मुखके कहे हुए हैं, ऐसा प्राचीन पण्डितोंका कथन है, क्योंकि उनके जो अन्य संस्कृत ग्रन्थ हैं उनमें भी वह श्लोक ऐसी ही आनुपूर्वीसे लिखे हैं इसकारण हमने भी नाटकमें वह श्लोक ज्योंके त्यों लिखकर सरलताके लिये तहाँ ही नीचे भाषानुवाद लिखदिया है।

आजकल हमारे हिंदी पाठकोंमेंसे अधिकतर महाशयोंकी रुचिका प्रवाह नाटक उपन्यासोंकी ओरको झुकने लगा है और केवल शृङ्गार रस प्रधान कलुषित नाटक उपन्यासोंके पढ़नेसे मनुष्यके धार्मिक जीवनमें बड़ी बाधा पड़ती है, क्योंकि प्रवृत्तिका और स्वार्थका प्रवाह तो सब ही योनियोंमें है परंतु निवृत्ति और परोपकारका उचित साधन इस मानवयोनिमें ही जुटता है अतएव मनुष्यताको सार्थक करने वाले निवृत्ति मार्ग और परोपकारकी ओरको झुकनेके निमित्त हिंदीभाषामें शास्त्रीय तत्त्वों से गुथे हुए सच्चे ऐतिहासिक नाटक उपन्यासोंकी आवश्यकता है, अतएव मेरा यह धर्मजीवनमय संकलन धार्मिक भारतवासियोंको रुचेगा, ऐसी आशा है, न जाने इस विषयमें मैं कहाँ तक कृतकार्य होऊँगा।

धार्मिकोंका प्रेमाभिलाषी—

(ब्र० कु०) रामस्वरूप शर्म्मा गौड़

मुरादाबाद.

॥ नमः श्रीशङ्कराय ॥

शङ्कर-विजय

(भगवान् शङ्कराचार्यजी की मर्त्यलीला)

(धर्ममूलक-नाटक)

प्रस्तावना

पहिले सब संगीतकार आकर एक साथ समयानुसार रागमें शिवजीकी प्रार्थना करते हैं ।

जय उमारमन ! महेश ! शमन-कलेश ! वन्दितसकलजन ! ।
जय सकल कलिमलहरन ! तारनतरन ! शिव ! कल्यानघन !
जय स्वेत अंग ! भुजंगभूषन ! शीस गंग लसैं जटन !
जय अलख ! आदि ! अनूप ! शांतिस्वरूप ! शिव ! करुणायतन
जय अलख ! अविनाशी ! अगोचर ! शिव ! चराचरनायक !
जय प्रणतहित ! नित शांतचित ! सुरईश ! संतसहायक ! ॥
जय अभय वर कल्यानकर ! वरवरन ! मंगलदायक ! ।
जय चंद्रभाल ! कृपाल ! जय दुखहरन ! सुख उपजायक !

तदनन्तर अञ्जुलिमें फूल लिये आशीर्वाद पढ़ता हुआ सूत्रधार परदेके बाहर आता है ।

सुभग चंद्रामाथे, गरल कर पावक नयन में ।
उमा है अर्द्धाङ्गी, दुसह विष निशदिन सुगल में ॥
करै जिनकी आज्ञा, जगत्के लय उत्पति थिती ।
तुमहिं सो नितदेवैं, अमित सुख सम्पति पशुपती ॥

सूत्रधार—आहा ! सहज ही क्षणभरमें जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलय करने वाले परमेश्वर सुख सम्पदा देकर तुम सबों के अज्ञानका नाश करें (ऐसा कहकर अञ्जुलिके फूलोंको

उछालना है) अहो ! प्रवीण सभ्य महाशयों ! गुणिगणमान्य पंडित मुकुटमणि वाणीगणनाथ चंद्रचूड़ाचरणनश्चरीक परम गुणोंका सन्मान करने वाली आपकी कीर्त्ति मुझको, दर्शन-मात्रसे गात्रको पवित्र करने वाली इस सज्जन सभामें खेंच लाई है मेरे मनमें तरंगकी उमंग उठती है कि मैं आपके संमुख कोई अभिनय करके दिखाऊँ आशा है आप उत्साह बढ़ाने वाले आशीर्वादके साथ आज्ञा देंगे ।

इतने ही में विचित्रवेषधारी विदूषक आगया

विदूषक-(आप ही आप) क्याकरूँ ? कल जो सुना था वह ठीक ही है, इस संसारमें संकट ही संकट है यदि निरंतर ऐसे ही संकट आते रहे तो यार संसारसेही जाते रहे । (उचक कर) वाह ! अच्छी मूर्ति है अरे ! कौन है रे ! शिरमें गाढ़ीका पहिया साले डाढी सम्भाले और गलेमें मोटा साँप डाले जलोदरसी तोंदपर हाथ फेरता मरघटका भूतसा बातें बघार रहा है?

सूत्रधार यह क्या चमत्कार है ! ऐसा अट्टसट्ट बोलनेवाला यह न जाने कौन बुद्धिका भण्डार है ! बड़े उत्साहके साथ पति के घर जाने वाली नवीना तरुणीका मार्ग काटने वाले बिलाव की समान इसने अपशकुन किया है अब मैं क्या उपाय करूँ? ।

विदूषक- अरे ! जागतेमें ऐसा क्यों बर्रारहा है, मेरे प्रश्नका उत्तर दे, नहीं तो कुत्तेको देखकर मुख छिपाने वाले सिंहकी समान भागकर छूटना, ऐसी बातें क्यों बनारहा है ? ।

सूत्रधार-अच्छे संकटमें फँसे ! बलिहारी हूँ इस बोलनेकी चातुरी पर और धन्यवाद है ऐसी बुद्धिको हाँ 'बहुरत्ना वसुन्धरा, यह बड़ोंकी कहावत बहुत ही ठीक है । हे भगवन् ! तुम्हारी लीला अपार है। अरे बाबा ! बता तो सही अचानक आकर मेरे कार्यमें विघ्न डालने वाला तू कौन है ? ।

विदूषक क्या अभी कौन है यह भी न समझे ? अरे गड़-बड़नाथ ? तेरी इन असम्बद्ध बातोंको सुनते २ मेरी आँखोंकी पुतलियें बैठीजाती हैं, अच्छा तो मैं इस सभाका वकील हूँ, बता क्या है ?।

सूत्रधार- वाह वाह ! तो क्या सभासद्द ऐसे बुद्धिसागर वकीलके द्वारा ही मुझको नाटक खेलनेकी आज्ञा देंगे ? तब तो मेरा भाग्यही उदय हुआ ! ।

विदूषक-अच्छा ! अपना भाग्य न फोड़िये, मैंने थोड़ासा हास्य विनोद किया था. जाने दीजिये । अब आपको यहां जो कुछ करना है उसके लिये इन सभासदोंकी आज्ञा है परन्तु पहिले यह तो कहिये कि होगा क्या ?

सूत्रधार-अरे बाबा ! यदि पहिले हीसे ऐसे होशमें आकर बोलता तो इतनी उलझन न पड़ती, घड़ी भरके लिये अपनी जबानको लगाम दे तो मैं सब कहता हूँ ।

विदूषक-अच्छा लगाम लगाली कहो (दोनों हाथोंसे मुख को दबाए डालता है)

सूत्रधार-अरे ! ऐसा क्यों करता है, क्या श्वास बंद करके मारता है ? कहीं प्राण न निकल जायँ ! और हम सब देखते रह जायँ ।

विदूषक-वाह वाह ! तुमभी यार दुमुहे हो, कभी कुछ और कभी कुछ कह रहे हो ? और मुझे कष्ट देरहे हो, कहिये शीघ्र कहिये । तुमको जो कुछ करना है उसमें तुम्हारी इस लबड़ धौं धौं और हाहा हूहूसे काम नहीं चलसकता, देखो यह सभासद्द उकता रहे हैं ।

सूत्रधार-ठीक बहुत ठीक,लीजिये हमारे पण्डितजीने धर्मशास्त्र के अनुसार, आजकलके लोगोंको रुचने वाला "शङ्कर-विजय" नामक एक नया नाटक बनाया है, मैं उसीका अभिनय करके

दिखाऊँगा, जिसमें शृङ्गार वीर, भक्ति, हास्य आदि रसोंका अच्छा जमाव और अज्ञानमें डूबते हुए भारतवर्षको ज्ञानोपदेश देकर चारों वर्णाश्रमोंके धर्मको दृढ़तासे स्थापित करनेवाले भगवान् शंकरस्वामीकी कथाका वर्णन है

विदूषक—अच्छा यह तो रहने दो, यदि पहिले फड़कती हुई दो लावनी सुनाओ तो बस मेरी जेबमें जो कुछ होगा वह सब तुमही इनाममें पाओगे (जेबमें हाथ डालकर एक झिंझीकौड़ी निकालता है)।

सूत्रधार— अरे! तू मुझसे गानेको कहता है, परन्तु यह अवसर नहीं है, देख वह संगीतविशारद नारदजी हरिगुण गाते मनमें हर्षाते आरहे हैं, उसको सुनकर हम दोनों अपना जीवन सफल करें [ऐसा कहकर दोनों जाते हैं]

इति प्रस्तावना

प्रथम-अंक।

प्रथम दृश्य—मर्त्यलोक

(माथेपर तिलक दिये हाथमें वीणा लिये हरिगुण गाते नारदजी आते हैं)

जय! जय!! जगजनक देव शंकर अविनाशी।
महा मोह तिमिर भानु, ईश सर्व शक्तिमान् ॥
अखिलेश्वर अपरिमान, शंकर स्वप्रकाशी ॥
जाकी महिमा अपार, गावत नित मति उदार।
निराकार निर्विकार, निर्गुण गुणराशी ॥
अद्वितीय अज अनूप, विपुल विविध भूतिभूप।
सत् चित् आनंदरूप, कठिन क्लेनाशी ॥
सर्वग सर्वज्ञ सत्य कर्त्ता कमनीय कृत्य।
जाके सब भूत भृत्य; अवनिज आकाशी ॥
पूर्ण प्राज्ञ पूज्य पितृ परमात्मा प्रभु पवित्र।

महा माननीय मित्र, उत्तम अनुशासी ॥
नित्य शुद्ध बुद्ध भक्त-करुणा कल्याण युक्त।
प्रेमी पालन प्रयुक्त, दुर्जन तन त्रासी ॥
यह प्रताप ताप गेह, बिनवत कर जोर एह।
दीजै निज सहज नेह, कीजै न निराशी ॥

नारदजी-आहा! विश्वकी रचना क्या ही अपूर्व है, देखते ही मन मोहित होजाता है, कितनी लीला होती हैं और लीन हो जाती हैं, जिनका कुछ पता ही नहीं है, परन्तु सबके मूल एक भगवान् ही हैं, जिधर देखो उधर उनका ही पसारा है, वह अनादि अनंत हैं, कोई उनका पार नहीं पासकता, इस असार संसारमें केवल एक वही सार हैं। जीव जन्तु, पशु पक्षी, कीट पतङ्ग, वृक्ष लता आदि सब कृतज्ञतासे उनका परिचय देरहे हैं, संसारमें कुछ दिन क्रीड़ा करके आयु पूरी होते ही एक२ करके अंतमें सब उसी पदमें लीन होजाते हैं। आहा! कैसा गहन भाव है! चराचर संसारसे उनका भेद वा अभेद कुछ नहीं है, वह चैतन्य-स्वरूप अनन्त विश्वमें व्यापकरूपसे विराज रहे हैं। आहा! यह कैसी अद्भुत बात है कि-वह जीवोंके हृदयमें व्यापकर भी पृथक् रहते हैं। जब पवित्र हृदयमें उनका ध्यान करता हूँ और उनके विचित्र कौशलमय कार्योंको विचारता हूँ तब ही उन्मत्तसा होजाता हूँ, सुधबुध जाती रहती है। आहा! उन परमप्रेमीके प्रेममें जिसका मन रँग जाता है वही आपेको भूलजाता है, उसीके हृदयसे भेदाभेद दूर होजाता है, वही जगत् भरको अपना कुटुम्ब समझने लगता है, ऐसे दुर्वासना और भेदभावको छोड़कर सदा आनंदमें मग्न रहने वाले महात्मा धन्य हैं वही महापुरुष मोक्षके अधिकारी हैं। नहीं तो जिन मूढोंको धार्मिकपुरुष घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, जो सदा मिथ्याभाषण पापकर्मोंमें मग्न रहते हैं और प्रज्वलित अग्निकी समान नरहत्यारूप घोर पाप

करते हैं, भूतल पर उनसा महापापी कोई नहीं है। ईश्वरका तथा भले बुरेका विचार करनेकी शक्ति होनेसे मनुष्य सबसे श्रेष्ठ है। जिनकी कृपासे मनुष्य ज्ञानरूप प्रकाशको पाकर चराचर विश्वको वशमें करसकता है, परन्तु हा! इस मनुष्य समाजकी कैसी दुर्दशा देखरहा हूँ! कितने कुलांगार हृदयसे कृतज्ञताको बिसार उन जगत् पिताके नियमोंको लाँघतेहुए स्वाभाविक घोर पाप कररहे हैं, कितनेही धर्मको छोड़ सत्यसे मुखमोड, धीरतासे असत्यकी वीरता दिखा रहे हैं! हा? सुखमय मृत्युलोकका यह परिणाम! न जाने वह पहिला समय कहां चलागया? वह पुण्यवान् तपोधन योगी ऋषि महात्मा वाल्मीकि आदि अब नहीं हैं, वह धर्मवीर सत्यप्राण महाराज हरिश्चन्द्र, श्रीराम, नल धर्मपुत्र युधिष्ठिर आदि अब नहीं हैं, जो धर्मकी रक्षाकी अपेक्षा राजसिंहासन दाम दासी और कुटुम्बको भी तुच्छ समझ कठोर क्लेशोंको सहने और वनोंमें संन्यासीके वेशमें रहते थे, अब पहिलेकी समान योग तप आदिका चमत्कार दिखाने वाला कोई नहीं है। हाय! सनातनधर्मकी कैसी दुर्दशा होरही है कि जिसको देखते हुए छाती दहली जाती है। बौद्ध, जैन क्षपणक आदि नाना प्रकार के विधर्म प्रवाहमें सत्यधर्म बहाजाता है, हाय! अब क्या उपाय होगा दिनदिन विश्वास उठाजाता है; दुर्बुद्धि मनुष्य कुतर्कोंमें पड़कर सीमासे बाहर होगये, परम पवित्र सनातनधर्मको त्याग विधर्मी होनेलगे इस घोर कलियुगमें धर्मकर्म तो रसातलको धसा चलाजाता है, अब विपत्ति जीवोंके शिरपर आपहुँची है, रक्षाका कोई ढंग नहीं है, हा! न जाने क्या होना है? (खिन्न हो कुछ देर टहलकर) अब क्या करना चाहिये (विचारकर) एक यही युक्ति समझमें आती है कि—सकल जीवहितकारी लोकपितामह ब्रह्माजीके पास जाऊँ, मेरा अन्तरात्मा कहता है कि—तहाँ अव-

श्य ही इसका कोई उपाय बनसकेगा। (हाथ जोड़ेहुए ऊपरको दृष्टि करके) हे अन्तर्यामिन्! हे देव! तुम्हारेही अनुग्रहसे मेरा मनोरथ पूर्ण होगा।

पद-लिख्यो कहा भाग मनुजके हाय!
भीषण पाप-प्रवाह थाह नहिं, वार न पार लखाय।
तरहिं पातकी जन, कोई ऐसो, दीखत नाहिं उपाय॥
भवभय-हरण शरण हे माधव, कीजिये वेग सहाय।
चढि तुव चरणकमल दृढ़ नौका, को न पार हुइजाय॥
श्रीमन्नारायण! नारायण! नारायण! श्रीमन्नारायण।३।

इसप्रकार हरिगुण गाते नारदजी आते हैं

—०—

द्वितीयदृश्य-ब्रह्मलोक।

(ध्यानमें मग्न ब्रह्माजीका विराजना और मौन धारे नारदजीका प्रवेश)

नारदजी-(मन ही मनमें) यह क्या! त्रिलोकीके विधाता ऐसे गम्भीर ध्यानमें क्यों मग्न हैं! मानो बाहरका ज्ञान ही नहीं है

ब्रह्माजी-(लम्बी श्वांस छोड़ते हुऐ आप ही आप) आः मनुष्योंका यह कैसा दुर्दैव देख रहा हूँ! अब क्या उपाय होगा! क्या अन्तमें मेरी सृष्टिकी दुर्दशा ही होगी? लीलामय भगवन्! तुम्हारी लीलाका पार कोई नहीं पासकता! (नेत्र खोलते ही अचानक नारदजी देखकर) तात! आओ मैंने आज तुम्है बहुत दिनोंमें देखा है? बेटा! तुम तो सदा आनंदमग्न रहते थे, आज तुम्हारे मुखपर खिन्नता क्यों दीख रही है? मर्त्यलोक में सब कुशल तो है? अनहोनी बात तो नहीं हुई? तुम्हारे मुख को देखनेसे मुझे संदेह होगया।

नारद हेपितः! हे अन्तर्यामिन्! प्रभो! आप मुझसे क्या बूझते हैं? आपसे कौन बात छिपी है!

ब्रह्माजी- बेटा! तथापि जो कुछ जानते हो कहो

नारद–अन्तर्यामिन् ! प्रभो ! क्या कहूँ ! अब मर्त्यलोककी कुशल नहीं है, मनुष्योंकी दुर्गति होरही है, ज्ञान अन्तर्धान हो गया, दुर्लभ मनुष्य जन्मको पाकर सब पशुसमान व्यवहार कर रहे हैं विवेकका पता नहीं, धर्मचर्चाकी तो बात ही क्या दिन दिन कुतर्क बढते जाते हैं, श्रद्धाका नाम नहीं, विश्वासका काम नहीं, सब नास्तिक होगए, जो कुछ बचा वह भी अधर्मियोंसे लचा है कुशल नहीं है, कोई स्वेच्छाचारकोही सर्वस्व जानते हैं, ईश्वरका होना मिथ्या मानते हैं,कोई दिखावेके लिये कर्मकाण्ड में रत हैं कोई नाशवान् धन ऐश्वर्यमें ही उन्मत्त हैं, दीन दरिद्र पीड़ा पाते हैं कोई जन्मांतरको न मानकर स्वार्थ साधनेके लिये ही सदा पापमें मग्न रहते हैं । ऐसे अनेकों प्रकारके सारहीन लक्ष्यहीन विधर्मप्रवाहमें सत्यधर्म वहा जाता है, हाय ! सनातन वैदिकधर्मकी दुर्दशा होरही है, अनेकों पापी नारकी दुष्ट पुरुष प्रकाशमय जीवित धर्मको त्यागकर असार विधर्मकी शाखाओंका आश्रय कररहे हैं । हे देव ! अब इस दासकी यही विनय है कि-शीघ्रही किसी उपायसे अपनी सृष्टिकी रक्षा करिये । अब भूमि पापके भारको अधिक नहीं सहार सक्ती, देव ! अब मुझसे जीवों की दुर्गति नहीं देखी जाती है हे मुक्तिदाता ! शीघ्र ही मुक्तिका उपाय करिये नहीं तो वसुधा रसातलको धसा चाहती है ।

ब्रह्मजी बेटा ! मैं जानता हूँ कि दूसरोंके दुःखको देख तुम्हारा मन मुरझाजाता है, मैं भी समाधिमें मर्त्यलोककी दुर्दशा देख व्याकुल होरहा हूँ अभी तक कोई उपाय निश्चित नहीं कर सका हूँ परन्तु आज इसीका उपाय विचारने के लिये इन्द्रदेवके यहाँ सभा होगी मैं वहीं जाता हूँ ।

(एक ओर ब्रह्माजी और दूसरी ओरको नारदजी जाते हैं)

—०—

तृतीय दृश्य देवलोकमें इन्द्रसभा ।

(इष्ट दिक्पाल आदि देवता मलिनमुख हुए आकर बैठते हैं)

कुबेर-मित्रों ! इस सुधर्मा सभामें हम सब तो नियत समय पर आ गये, परन्तु महाराज अभी तक न जाने किस कारण नहीं आये ?

यम-मैंने इसका समाचार मँगालिया है, महाराज इन्द्र प्रस्तुत कार्यका विचार करनेके लिये गुरु बृहस्पतिजीके साथ नन्दन भवनके गुप्त मन्दिरमें बैठे सम्मति कर रहे हैं, इस कारण ही सवारी आनेमें विलम्ब हुआ होगा ।

अग्नि-हाँ यह तो ठीक है, परन्तु सब देवता बैठे २ बाट देखरहे हैं, इतना कहलाभेजनेमें क्या कुछ हानि है ? ।

वरुण-हानितो तो न कहिये ! महाराज गुप्त मन्दिरमें बृहस्पतिजीके साथ सम्मति कर रहे हैं; इस दशामें जहाँ जानेको पवनकी भी छाती नहीं है तहां दूसरा कौन जाकर समाचार पहुँचावेगा ?

सूर्य-यह ठीक है, परन्तु इतनी अधिक झंझट करनेकी तुम्हें कौन आवश्यकता है, दो घडी बाट ही देखलोगे तो क्या हानि है ?

(इतने हीमें चन्द्रमा आते हैं)

कुबेर-ठीक ठीक, यह निशाकर आरहे हैं, इनको पूरा २ वृत्तान्त मालूम होगा, कहिये निशानाथ ! महाराज इन्द्रदेवके विषयका कुछ समाचार आपने सुना है क्या ?

चन्द्रमा-हाँ सुना है कि इस समय हम सबोंपर जो संकट है उसके विषयमें क्या करना चाहिये, यह विचार बृहस्पतिजीके साथ एकांतमें होरहा था, ब्रह्माजी इतने ही में भी आगये, यह बात मैंने अभी सुलक्षण द्वारपालसे सुनी थी, वैसे ही इधर को चला आ रहा हूँ ।

यम-अरे ! वह देखो ब्रह्माजीका विमान भी आरहा है, अब तिल भर भी दुःख न मानो, सकल ही कष्टोंसे छुटकारा हुआ जानो।

(इतने हीमें परदेके भीतरसे शब्द आता है)

[सकलदेवतासार्वभौमश्चण्डदोर्दण्डवलखण्डितराक्षसश्रीः, विलापभरितधाराधरकुहरो वज्रधरः, चतुर्मुखेन सह गच्छतीति सर्वैरोनारः कर्त्तव्यः शनैः शनैश्चलतु महाराजः]

दूत-(दौड़ता हुआ आकर महाराज आगये।

(सब उठ कर खड़े होते हैं)

तदनन्तर इन्द्रदेव और ब्रह्माजी आकर आसनपर बैठते हैं सब देवता क्रमसे प्रणाम करते हैं।

इन्द्र बैठो देवताओं बैठो (सब अपने २ आसनपर बैठते हैं) मित्रों ! तुम्हारे संकटको दूर करनेके लिये साक्षात् सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजीने विचार किया है और आगेको जो कुछ करना चाहिये उसकी भी आज्ञा दी है।

वरुण-देवनाथ ! महापुरुषोंका अवतार परोपकारके लिये ही होता है, अतः ब्रह्माजी हमारे निमित्त जो कुछ करें सो उचित ही हैं, परन्तु श्रीमहाराजने कौन उपाय करनेकी आज्ञादी है ? उसके सुननेको सब देवता उत्कंठित होरहे हैं।

ब्रह्माजी-हे देवताओं ! तुम्हारे यह कुमलाये हुए कमलोंकी समान मुख मुझसे नहीं देखे जाते, और यह संकट, कैलास पर पहुँच पार्वतीपति महादेवजीको सुनाये विना दूर नहीं होगा.इस लिये सब मिलकर इस उद्योगको करो बस कार्य सिद्ध हुआ ही समझो।

इन्द्र परन्तु महाराज ! आप और विष्णु भगवान् भी हमारे साथ अवश्य होने चाहियें, क्योंकि-बड़ोंके आश्रय विना शिवजीके दरबारमें शीघ्र सुनवाई होना कठिन है।

ब्रह्माजी-हाँ मैं तो चलूँगा ही, उन भोलानाथका दर्शन करे बिना मुझे बहुत दिन होगये हैं, विष्णु भगवान्से प्रार्थना करोगे तो वह भी अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे ।

इन्द्र-मित्रों ! अब विलम्ब क्या है ? सब मिलकर श्रीविष्णु-भगवान्को साथ लेते हुये कैलासको चलें ।

सब-हाँ हम तयार हैं (सब जाते हैं)

चतुर्थ दृश्य—कैलास पर्वत ।

पार्वती, गणेश और स्वामिकार्त्तिकेय सहित आसन पर बैठे हुए महादेवजी का दर्शन ।

पार्वती—हे प्राणवल्लभ ! आप मुझसे और इन दोनों बालकों से प्रेमके साथ भाषण करते २ अचानक घबडाकर लम्बे और गरम श्वास छोडने लगे यह देखकर मैं बडी व्याकुल होरही हूँ, उस त्रिपुरासुरकी समान कोई दैत्य तो देवादिकोंको कष्ट नहीं देरहा है ?

महादेवजी—हे प्रिये ! इस हृदयकी बातको जान लेनेकी तेरी चातुरीको देखकर मैं बडा प्रसन्न हुआ हूँ । प्रिये ! किसी दैत्य का तो भय नहीं है, परन्तु कुछ समयके लिये मुझे मृत्युलोकमें अवतार लेना पड़ेगा, क्योंकि-आजकल भूलोकमें दुराचार बहुत बढ गया है ।

पार्वती—अच्छा तो मुझे भी साथ ले चलिये, क्योंकि-आप जब २ अवतार धारते हैं, मेरे सहित ही भूलोकको सिधारते हैं ।

महा० नहीं नहीं, इस अवतारमें तुम्हारी कुछ आवश्यकता नहीं है, क्योंकि-ज्ञानमार्गकी स्थापनाके लिये मुझे संन्यासी बनना पडेगा उसमें स्त्रीका क्या काम ?

पार्वती—ऐसा क्यों ? यह बात तो मैं नहीं जानती थी, क्या अब आप संन्यासी बनेंगे ? क्या जैसे अर्जुनने सुभद्राको हरने

के लिये संन्यासीका रूप बनाया था, तैसा ही आप भी करेंगे? तब तो मुझे अच्छा तमाशा देखनेका अवसर मिलेगा !

महा०–तमाशेके ध्यानमें न रहो, इस अवतारमें बड़ा भारी शास्त्रार्थ होगा, बडे २ कुतर्कियोंको जीतना पड़ेगा और भूलोक में तुम्हारे प्रिय अद्वैतमार्गकी बहुत चर्चा होगी ।

पार्वती-परन्तु भूलोकमें ऐसा दुराचार करनेवाले कौन हैं ।

महा०–बतानेकी कौन आवश्यकता है, सब तुम्हें प्रत्यक्ष हुआ जाता है. वह देखो ब्रह्मा विष्णुको साथ लिये इन्द्रादि देवता आरहे हैं, उनके मुखसे सब सुन लोगी (सब देवता प्रणाम कर आकर खडे रहते हैं)

महा० बैठो देवताओं बैठो; मित्र विष्णुजी ! ब्रह्माजी ! आप इधर आइये (सब देवता यथायोग्य स्थान पर बैठते हैं) कहिये विष्णुजी ! ब्रह्माजी ! आज इन सब देवताओंके साथ कैसे आना हुआ ?

ब्रह्माजी–चन्द्रशखर ! आप त्रिकालज्ञ हैं, सबके घट २ की जानते हैं ।

महा०–अच्छा कहो तो सही,मेरे करनेका कौन काम है,यदि साध्य होगा तो अवश्य करूँगा ।

इन्द्र–(आगे बढ कर) हे भक्तभयभञ्जन ! करुणासागर ! आप रातदिन देवताओंके हितचिन्तनमें मग्न रहते हैं, इससमय देवताओंके ऊपर संकट पडा है, भूलोकमें बौद्ध बडे उन्मत्त हो गये हैं, अनादि वेदमार्गका तिरस्कार करते हैं, श्रौतकर्म नष्ट हो चला, ब्राह्मण भी स्नान संध्या आदि षट्कर्मोंको छोड़ कर उस मतमें जाने लगे, अधिक क्या कहें, सूर्यनारायणको नित्य एक भी अंजुलि न मिलनेका समय आगया, आजकलके राजे भी उसी मत पर आरूढ होगये, बौद्धोंमें बड़े २ पण्डित होगये, संस्कृतमें बड़े २ ग्रन्थ लिखकर वेदमार्गका खण्डन करते हैं,बौद्ध

कापालिक, दिगम्बर आदि अनेकों नास्तिकोंके कारण वैदिक मार्ग तो बन्द ही होगया, अब भूलोकमें ज्ञान वैराग्य आदिकी तो चर्चा ही किसको सुहावेगी ? ऐसी दशामें यज्ञ याग आदि शान्तिक पौष्टिक कर्म बन्द होजानेसे इन अनाथ देवताओंका स्वर्गलोकमें जीवन कैसे हो ! सब देवता विकल होरहे हैं इस कारण ही मिल कर आपके चरणकमलोंकी शरण आये हैं (ऐसा कह नमस्कार कर मौन होकर बैठते हैं)

महा०—इन्द्रदेव ! घबडाओ मत, नास्तिक बहुत बढ चुके, अब शीघ्र ही वह अपने कर्मोंका फल पावेंगे, मैं भी कितने ही दिनोंसे इस विचारमें हूँ । यद्यपि, स्वामिकार्त्तिकेय, गणेश और पार्वती मुझे परम प्रिय हैं परन्तु ज्ञानमार्ग मुझेको उन से भी प्यारा है, उसका नाश करने वाले बौद्धों का उद्धतपना अब मैं बहुत दिनों तक नहीं रहने दूँगा, यदि अब ही अवतार धार मैं ज्ञानमार्गकी स्थापना करने लगूँ तो नहीं हो सकेगी, क्योंकि—इस समय सकल प्राणी कर्मभ्रष्ट होनेके कारण ज्ञानोपदेशके पात्र नहीं रहे हैं, इसलिये सब मार्गोंके मूल कर्ममार्गकी स्थापना पहिले होनी चाहिए, इसलिए एक काम करो !

इन्द्र—कहिये ? महाराज ! जो आज्ञा हो उसको पूरी करने के लिये यह सबही आपके दास तयार हैं ।

महा० देवेन्द्र ! तुम सुधन्वा नामसे बौद्धोंके कुलमें ही जन्म लो और नीतिके साथ राज्य करने लगो तथा बौद्धोंको जीतनेके लिये जो आवै उसकी सहायता करके वेदनिन्दकोंका नाश करो।

भगवन् ! आपकी आज्ञा तो शिरोधार्य है, परन्तु चिंता यह है कि नीचकुलमें कैसे जाऊँ ? जो वेदोंकी प्रत्यक्ष निंदा करते हैं और ब्राह्मणोंसे वैरभाव रखते हैं, उनके साथ तो क्षण २ समय विताना कठिन होजायगा ?

महा०-इन्द्रदेव! यह कैसी बात मनमें लाते हो, भूमिके उद्धार के लिये विष्णु भगवान्ने क्या वराहावतार नहीं धारा था? भाई! बड़ाभारी परोपकारी कार्य साधनेके लिये यदि नीचकाम भी करना पड़े तो वह भूषण ही होता है, तुमको कोई चिंता न करके मेरा वचन मानना ही चाहिये। मत्स्यावतार धार वेदों का उद्धार कर जो यश भगवानने पाया था वही यश तुम भी पाओगे, क्योंकि यह उद्योग भी वेदोंके उद्धारके लिये ही है।

इन्द्र-बहुत अच्छा महाराज! आपकी आज्ञाका पालन करने के लिये यह दास निःशंक है।

महा०! बेटा स्वामिकार्त्तिकेय! तुम भट्टपाद नामसे ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर सुधन्वा राजाकी सहायतासे बौद्धोंको जीत कर्मकाण्डका प्रचार करो।

स्वामिकार्त्तिकेय-ऐसा कौन पुत्र होगा, जो पिताकी आज्ञा न माने, यह बालक आज्ञाको शिरोधार्य करता है।

महा०-हे देव नारायण! हे चतुरानन! तुमको भी इस कार्यमें सहायता करनेके लिये अवतार धारना होगा।

ब्रह्माजी-मैं भी शिवहीन स्थानमें रहते डरता हूँ।

विष्णु-कहिये शंकर! आपने मेरे विषयमें क्या विचार किया है?

महा०-हे चक्रपाणे! आप शेषजीको साथ लेकर संकर्षण-रूपसे भट्टपादरूपधारी स्वामिकार्त्तिकेयकी सहायता करें और हे ब्रह्माजी! आप गृहस्थधर्मकी रक्षा करतेहुए जीवोंको मोक्षफल देने तथा देवताओंको संतुष्ट करनेके लिये ब्राह्मणकुलमें अति-प्रसिद्ध मंडनमिश्र नामसे उत्पन्न होकर याग यज्ञादि कर्मकाण्डके पक्षपाती बनो।

ब्रह्मा और विष्णु-हम आपकी इच्छानुसार कार्यको स्वीकार करते हैं।

महा०-और सब अंशावतारसे ब्राह्मणकुलोंमें उत्पन्न हो धर्म-मार्गका प्रचार करें।

सब-हम सब श्रीमहाराजकी आज्ञाका पालन करनेको उद्यत हैं

इन्द्र-भगवन्! यह तो कहिये कि आप अवतार धारकर किस कुलको कृतार्थ करेंगे?

महा०-पवित्र भारतवर्षके केरलदेशमें एक स्थान है जहाँ वैदिक सनातनधर्मावलम्बियोंका निवास है, वहाँ आकाशलिंगनामसे प्रसिद्ध एक मूर्ति है, मैंने विचारकर स्थिर करलिया है कि उस मूर्त्ति में मेरा पूर्ण अधिष्ठान होगा, वहाँ शिवभक्त पवित्र ब्राह्मणवंश की एक 'विशिष्टा' नामक स्त्री है कि जो निरन्तर भक्तिमें भरकर मेरी पूजाकरती हुई मुझसे सर्व श्रेष्ठ सन्तान मांगती थी, मैंने तथास्तु कहकर उसको वचन देदिया है। और उस 'विशिष्टा'के पति शिवगुरु ब्राह्मणने भी प्राणपणसे मेरी सेवा करी है यदि मैं ऐसे सेवकोंकी इच्छा पूरी नहीं करूँगा तो मुझे सब दोष देंगे और फिर कोई मेरे शिवनामका स्मरण भी नहीं करेगा, अतः मैंने विचारा है कि विशिष्टा और शिवगुरुको माता पिता बनाकर भूलोकमें मनुष्य नाट्य करूँगा और शंकराचार्य नामसे प्रसिद्ध होऊँगा; तब वेदादि अमूल्य ग्रन्थोंका उद्धार और भूलोकमें फिरसे स्मृति, न्याय धर्मशास्त्रका प्रचार होगा, लोकोंके सकल खोटे संस्कार दूर होकर पूर्ववत् योग जप तप आदि सनातन-धर्मपर प्रेम होगा, चार्वाक और बौद्धमत विलीन होजायगा तात्पर्य यह है कि मैं भारतकी सबप्रकारकी अशांतिको दूर कर के ज्ञानमार्गकी स्थापना करूँगा, उपनिषद् गीता और व्यास सूत्रोंपर भाष्यरचूँगा, अच्छा अब सबको अपने उद्योगमें लगना चाहिये।

सब०-जो आज्ञा श्रीमहाराजकी सब स्तुति गातेहुए जाते हैं)

जय जय महेश आनन्द शंकर भूतपति विश्वम्भर।
जय पतितपावन दुखनसावन त्रिगुण वपुधारन हर॥
जय चन्द्रभाल कृपाल निजजन पाल त्रिपुर विनाशक
जय मयहु आनँद कंद शिव स्वच्छन्द ज्ञान प्रकाशक॥

द्वितीय-अंक

प्रथम-दृश्य

मयूरपिच्छधारी दो बौद्ध पण्डित आते हैं।

बौद्धकिशोर अर्हद्भ्यो नमोनमः, अर्हद्भ्यो नमो नमः आः, भगवान् बौद्धाचार्यने हमारा कैसा उत्तमधर्म स्थापित किया है "नास्ति परलोकः मृत्युरेव मोक्षः ऋणं कृत्वा घृतं पिब" यह बौद्ध वचन कानोंको कैसा सुख देते हैं, जिसमें परलोककी आशापर देहको क्लेश नहीं, मरनाही मोक्ष है, ऐसे सुन्दर वंशमें जिन्होंने मुझे जन्म दिया है उन अर्हद्देवका उपकार मैं कभी नहीं भूलूँगा (आगेको देखकर) अहो! यह तो मित्र जैनेन्द्रकिशोर इधरको ही आरहे हैं, मित्र! आइये आइये।

जैनेन्द्रकिशोर-(आनन्दके साथ मिलकर) नमोनमः कहो मित्र आनन्द तो हो?

बौद्ध०-हाँ देहमात्रसे आनन्द हैं।

जैनेन्द्र०--भाई ऐसी सन्देह भरी बातसे तुम्हारे स्वमित्रको खेद होता है, कहो तो सही क्या हुआ?

बौद्ध०-अरे भाई! कौन बात सुनाऊँ, क्या किया जाय? अपना समय ही उलटगया।

जैनेन्द्र०-अरे! यह भी आश्चर्य ही है, क्योंकि तुमसे वीर-पुरुषके मुखसे तो कभी ऐसे अक्षर निकले नहीं यह तो कहो समयका उलटना कैसे समझा?

बौद्ध०-'राजा कालस्य कारणं,' यथा राजा तथा प्रजा' यह बात तुम नहीं जानते हो क्या ? अरे ! राजाका चित्त फिरतेही समय भी फिरजाता है।

जैनेन्द्र०-मित्र ! यह क्या कह रहे हो राजा सुधन्वाकी बुद्धि उलटी होगई क्या ?

बौद्ध०-क्या कहूँ मित्र उस दुष्टका तो नाम न लो वह तो हमारे वंशमें कुलाङ्गार निकला, जिस समय इसके बापका मरण होकर इसको राज्याभिषेक हुआ था तब इसके बालकपनेके वर्त्तावोंको देखकर ही मैंने कई मित्रोंसे कहा था कि यह कुल्हाड़ीका दंडा वंशका काल होगा।

जैनेन्द्र०-अच्छा यह तो कहो वह ऐसा कौन काम करता है?

बौद्ध० क्या कहूँ ! अपने परम्परागत धर्मपर उसकी कुछभी श्रद्धा नहीं है हमारे शत्रु ब्राह्मणोंसे मित्रता रखता है और भी उसने एक ऐसा दुष्कर्म करडाला है कि जिसको सुनते ही शरीर पर रोमांच खड़े होते हैं (ऊपरको देखकर) देव ! ऐसे दुष्टके नेत्र क्यों नहीं फोड़ देते।

जैनेन्द्र०-मित्र ! कहो तो सही राजाने ऐसा कौन दुष्कर्म किया है ?

बौद्ध०-आज दो महीने हुए राजमहलमें एक ब्राह्मणसे वेद-पाठ करा रहा है और उसको बहुतसी दक्षिणा देता है।

जैनेन्द्र०-(कानोंपर हाथ रखकर) अर्हन् अर्हन् अर्हन् ऐसा घोर काम, अरे दुष्ट ! इन आचरणोंसे क्या तू इस निष्कलंक राजसिंहासन पर टिकसकेगा ?

बौद्ध० क्या कहूँ मित्र ! सब राजपरिवार भी इसी चिंतामें है ऐसे इष्टद्रोही पुरुषको कैसे सहैं देखो इस बौद्धधर्ममें कोई कष्ट नहीं है परन्तु हमें इसके नीच आचरणोंके कारण रात दिन चिंता जलाती रहती है।

जैनेन्द्र०-तो भाई सबको मिलकर राजाकी बुद्धिके भ्रमको दूर करनेका यत्न करना चाहिये।

बौद्ध०-अरे भाई धीरे २ बोल ऐसी ही सम्मति पहिले दो चार बारहुई,परन्तु इस दुष्ट राजाने उन लोगोंको पकड़कर प्राणान्त दंड दिया।

जैनेन्द्र० अब कुछ भी उपाय नहीं देखकर यदि हम सब बैठे रहेंगे तब तो यह दुष्ट किसी समय हमारे मतका सर्वनाश कर डालेगा, इस लिये कोई न कोई युक्ति करके इस कांटेको निकाल ही डालना ही चाहिये।

बौद्ध०-ठीक है मैंने अपने एक शिष्यको कुछ भेद लेनेके निमित्त राजमहलमें भेजा है, यहाँ खड़ा उसीकी बाट देखरहा हूँ देखो वह आकर क्या कहता है।

इतनेहीमें शिष्य आता है।

शिष्य-अर्हद्भ्यो नमोनमः, मैं श्रीचरणोंकी कृपासे राजमहल में तो पहुँचगया, परन्तु गुरुजीकी आज्ञानुसार कार्य करनेका मुझको अवसर नहीं मिला और मैंने इस समय जो बात सुनी है वह अत्यन्त ही कष्टदायक है।

बौद्ध०-उपासक! कहो क्या सुना, इस समय तो जितने भी कष्ट आवें थोडेही हैं।

शिष्य-एक भट्टपाद नामक ब्राह्मण हमारा नया शत्रु उत्पन्न हुआ है वह सकल शास्त्रोंका पूरा पण्डित है और उसका विचार सकल बौद्ध सिद्धांतोंका खंडन करनेका है, चारों ओर यह बात फैलरही है, तथा ऐसा भी सुननेमें आया है कि उस ब्राह्मणका राजासे बहुत कुछ मेलबढ़गया है और वह दो तीनवार गुप्तरूपसे आकर राजासे एकांतमें मिला है।

बौद्ध०-लो जैनेन्द्रकिशोर! यह एक नईहुई (शिष्यसे) अरे! तो तू उस दुष्ट राजाका शिर क्यों न काटलाया, फिर जो होता हम देखलेते।

शिष्य-मैं इसी घातमें गया था, देखपावेगा तो पहरेवाला नहीं जाने देगा इस भयसे शस्त्रको जामेमें छिपा लिया था, परंतु उस नीचकी भृकुटि देखते ही मेरे हाथ पैर सटपटा गये, शरीर काँपने लगा जीभ ऐंठसीगई और क्या कहूँ शस्त्र खिसककर नीचे गिरपड़ा, राजाने शस्त्रको गिरताहुआ देखतेही, अरे! इसको पकड़ो यह कौन मेरे प्राण लेनेको आया था, इतना कहा कि मैं तहाँसे भागता हुआ आपके समीपको ही आया हूँ।

बौद्ध-हा मूर्ख! सब बात बिगाड़दी, और केवल बात ही नहीं बिगाड़ी किंतु मेरे ऊपर भी, राजाका संदेह करदिया, क्योंकि राजाने तुझे मेरे साथ अनेकों बार देखा है, और जो कुछ हुआ, (जैनेन्द्रकिशोरसे) मित्र! इस समय मेरे चित्तमें बड़ी व्याकुलता है अब मैं एक सम्मति करनेको जाता हूँ नमोनमः

जैनेन्द्र०-जाइये मुझे भी अत्यावश्यक काम है, मैं भी जाता हूँ, नमोनमः (दोनों जाते हैं)

द्वितीय-दृश्य

(दो ब्राह्मण पंडित हाथमें हाथ पकड़कर बात करते हुए आते हैं)

प्रभाकर-कहिये पं० नीलकंठजी आपने कल कहा था कि शीघ्र ही तुमको एक शुभ समाचार सुनाऊँगा बताइये वह कौन बात है मेरे मनमें सुननेके लिये बड़ी उत्कंठा होरही है।

नीलकंठ हाँ सुनिये, प० भट्टपाद नामक एक अवतारी पुरुष इन बौद्धोंका मद उतारनेके लिये ब्राह्मणकुलमें दीपकरूप उत्पन्न हुआ है, अब थोड़े ही दिनोंमें तुम सुन लोगे कि नगरके मंदिरोंमें शिव और विष्णुकी मूर्त्ति स्थापित होगई।

प्रभा० अरे भाई! यह तो तुम्हारी आशा ही है यह तुमने किससे सुना है? और वह अवतारी है इसका प्रमाण क्या?

नील०-उसका सब वृत्तान्त सुनकर तुम ऐसा नहीं कहसकोगे

प्रभा०-हाँ तो सब सुनाइये न; जिसको स्मरण करता हुआ आनन्दसे दिन बिताऊँ।

नील०-अरे भाई! उस पंडितने बौद्धका वेष बनाकर उन्हीकी पाठशालामें पढ़ना प्रारम्भ किया, उस शालामें प्रत्येक विद्यार्थीसे वेदोंको दूषण लगाकर लेख लिखानेकी रीति है, जब इस भट्टपादसे कहागया तब इसने भी वेदों पर दोष लगाकर लेख लिखा, उसको पढ़तेहुए मैं ब्राह्मण होकर कैसा अनुचित कर्म कररहा हूँ ऐसा ध्यान होकर इसके नेत्रोंमें आँसू भर आये ऐसी दशा देखते ही यह बौद्ध नहीं ब्राह्मण है' ऐसा जानते ही उन तीन बौद्धोंने भट्टपादको टीले परसे नीचेको ढकेलदिया उस समय गिरते २ तिस ब्राह्मणने 'यदि वेद सच्चे हैं तो मेरा बाल बाँका न हो' ऐसा कहा और उसके चोट न लगी तथा भूमिपर खड़ा होगया परन्तु इसमें उसका एक नेत्र जातारहा।

प्रभा०-अरे भाई जब उसने अपना सब भार वेदोंके ऊपर रक्खा तब उसका नेत्र क्यों गया?

नील०-उसने [वेद यदि सच्चे हों] ऐसे सन्देह भरे शब्द उच्चारण किये थे इसकारण उसको यह दंड मिला।

प्रभा०-भाई उसको तिस नीच पाठशालामें पढना ही क्या पड़ा था?।

नील०-यद्यपि उसको हमारे सब शास्त्र आते ही हैं परंतु खंडन तो बौद्धोंका करना था और उनके शास्त्रोंका भेद कुछ भी मालूम नहीं था इस कारण उनकी पाठशालामें पढ़नेको जानापड़ा।

प्रभा०-धन्य है धन्य है ऐसे सत्पुरुषको, जैसा तुम कहरहे हो इसके सुननेसे तो निःसन्देह अवतारी ही प्रतीत होता है, नहीं तो ऐसा साहस कैसे करसकता था और ऐसा वेदका गौरव भी कैसे रहता?हाँ यह तो कहो फिर आगे क्या हुआ मुझे सुनने

को बड़ी उत्कंठा होरही है, टीलेपरसे धक्का देनेके अनंतर उस वेदके प्रेमीने कौन काम करनेका आरंभ किया है ? ।

नील० उसने अब यह विचार किया है कि मैं बौद्धोंका प्रकट शत्रु होगया, और अब यदि निराश्रय रहा तो यह नीच मेरे प्राण लेनेमें कुछ उठा न रक्खेंगे इस कारण राजाका आश्रय लेकर एक बार उनके साथ वाद विवाद करूँ, फिर यश वा अपयश मिलना ईश्वरके अधीन है।

प्रभा०-ओः यहांतक बात पहुँचगई ? अभी तक ब्राह्मणको ईश्वर भरोसे पर ऐसा अभिमान है ? मित्र ! आज तुमने मुझ को यह प्रिय समाचार सुनाया इसके लिये मैं तुमको बहुत २ धन्यवाद देता हूँ।

नील०-मित्र ! पहिले यह चमत्कार तो देखो (परदेकी ओर को दिखलाता है) बहुतसे ब्राह्मण जिनमें वह वेदाभिमानी परमपण्डित भट्टपाद भी तारागणोंमें शरद्ऋतुके पूर्ण चन्द्रमा की समान शोभा पारहे हैं पुस्तकोंके ढ़ेर लिये हुए राजमहल की ओरको चले जारहे हैं, न जाने अब क्या चमत्कार होगा, भाई इसको देखनेका अवसर हमें न खोना चाहिये, चलो हम भी इनके ही साथ होलें

दोनों जाते हैं

तीसरा-दृश्य-राजमहल

(आसन पर बैठे हुए सुधन्वाका प्रवेश)

राजा-क्या करूँ?न जाने ईश्वर इन पाखण्डियोंके संगसे मुझे छुटावेगा या नहीं, अब यह अधम आगे पीछे आकर यहां धन्ना देंगे और दूषित वाणीसे बड़ बड़ करेंगे, मैं उसको सुनूँगा ही नहीं, इस सब समूहमें मेरी इच्छाके अनुसार बर्त्ताव करने वाला केवल एक मेरा मन्त्री ही है,बस उन दुष्टोंकी बकबाद सुनकर तपे

हुए हृदयको शान्ति तो उस प्रिय मन्त्रीके भाषणसे ही होती है। (परदेकी ओरको देखकर उधर कौन है रे ? इतने हीमें द्वारपाल आता है)।

द्वारपाल-महाराज मैं दासानुदास हाजिर हूँ (प्रणाम करता है)

राजा–अरे दुर्मुख ! विजयपाल मन्त्रीको बुला ला।

द्वारपाल–जो आज्ञा (ऐसा कहकर परदेके भीतर जाता है और फिर मन्त्रीके साथ प्रवेश करता हुआ मन्त्रीसे कहता है) चलिये, श्रीमहाराज कुछ आज्ञा करनेके लिये इधरको दृष्टि लगाए बैठे हैं।

मन्त्री–(सिंहासनके समीप जा प्रणाम करके) महाराजकी जय हो, श्रीमहाराजने इस दासको कौन आज्ञा करनेके लिये स्मरण किया है।

राजा–प्यारे मन्त्री ! समझ बूझकर दुराचरण करना और निजजनोंको विरुद्ध आचरण करना, यह दोनों ही परम दुःख की बात हैं, यह दोनों ही बातें जिसके गले पड़ें वह प्राणी मेरे समझमें इस दुःखको नरकवाससे भी अधिक मानेगा, मन्त्री ! मुझे सार्वभौम पद मिला है, असंख्य धन है, अमृत पीनेके सिवाय इन्द्रपदका सबही सुख है, यह कहना अनुचित नहीं है। परन्तु उन ऊपर कहीं दोनों बातोंकी झंझटमें पड़जानेसे मुझे यह अपने प्राण भी भार मालूम होरहे हैं, जैसे औषध न मिलनेके कारण रोग बढ़कर शरीरको क्षीण करडालता है, तैसे ही मेरी यह पीड़ा बहुत बढ़गई है अतः अब मुझे निश्चय होगया कि यह प्राणोंको लेकर ही मेरा पीछा छोड़ेगी।

मंत्री–महाराज ! श्रीमहाराजके इस गूढ भाषणको यह मन्दमति स्पष्टरूपसे नहीं समझ सकता, इसलिये एकबार फिर स्पष्टरूपसे कहनेका परिश्रम करिये।

राजा-मंत्री ! इसमें गूढ ही क्या है, भाई इस बौद्धधर्मके वेदवाह्य समझ बूझकर पातक करने पड़ते हैं और राजनीति निजजनोंके प्रतिकूल कार्य कराती है, देखो यह दोनों ही काम मुझ एकके हाथसे होनेके कारण प्राणान्त संकट होरहा है।

मंत्री-राजाधिराज ! ऐसे अधीर न हूजिये, यदि कांच हीरे के स्थानपर पहुँच भी जाय तो वह उस स्थानपर बहुत दिनों तक नहीं रहसकता, परीक्षाके समय 'काचः काचो मणिर्मणिः' कांच कांच ही होगा और हीरा हीराही होगा, हे स्वधर्मपालक ! आप अपने चित्तमें कुछ भी खेद न मानिये।

राजा०-हाँ ! अच्छा स्मरण आया, क्या कोई ब्राह्मण कुल का उद्धारकर्त्ता भट्टपाद उत्पन्न हुआ है ? तुमने ही तो मुझसे कहा था कि कहींसे गुप्तपत्रमें यह समाचार आया है, उसकी सत्यताके विषयमें कोई दूसरा समाचार मिला क्या ?

मंत्री-महाराज और प्रमाणकी कौन आवश्यकता है, वह भट्टपाद ही अनेकों श्रेष्ठ ब्राह्मणों सहित कल श्रीमानके नगरमें आकर एक शिवालयमें ठहर रहे हैं वह आज राजसभामें भी आने वाले हैं।

राजा-(प्रसन्न होकर) ओहो ! क्या यहाँ उनका शुभा-गमन हुआ है ? ।

मंत्री-हां हाँ, जब मैंने यह समाचार अपने दूतके मुखसे सुना उसी समय शिवालयमें गया और अपनी आंखोंसे देखकर निश्चय कर आया हूँ।

राजा-मंत्री ! तुम धन्यहो, उन महाभागके दर्शन करके तुम पवित्र होगए, इस अधमको न जाने कब दर्शन होंगे।

मन्त्री महाराज ! सावधान हूजिये, यह सभामें नित्य आने वाले जैन, कापालिक, दिगम्बर भैरवी क्षपणक आदि पण्डित आरहे हैं।

राजा हे ईश्वर ! इन वेदनिन्दकोंका तो मुख न दिखा

(इतनेही में पूर्वोक्त सब पंडित क्रमसे आकर राजाकी जय हो, ऐसा कहते हुये अपने २ स्थान पर बैठते हैं)

राजा-(माथेपर हाथ रखकर) मैं सब पण्डितोंको अभिवन्दन करता हूँ।

पंडित-महाराजके मनोरथ सिद्ध हों।

(इतने हीमें द्वारपाल घबड़ाया हुआ आता है)

द्वारपाल-(हाथ जोड़े हुए प्रणाम करके) पृथ्वीनाथ ! कितनेही ब्राह्मण राजद्वार पर आकर खड़े हैं और श्रीमान्से मिलनेकी इच्छा करते हैं, जैसी आज्ञा हो वही किया जाय।

जैनपण्डित-(बीचमें ही) राजन् ! तुम्हारे समयमें ब्राह्मणों का आवागमन बहुत बढगया है, परन्तु यह हमारे कुलाचारके प्रतिकूल है. ऐसा करनेसे तुम्हारे ऊपर बुद्ध भगवान्का कोप होगा, इस कारण उन ब्राह्मणोंको सभामें आनेकी आज्ञा न दीजिये

राजा-(मन्त्रीकी ओरको मुख करके) क्यों मन्त्री ! मेरी उस समय कही हुई दोनों बातें सामने आई न ? (पंडितोंकी ओरको फिरकर) महाराज ऐसा करना राजनीतिके विरुद्ध है, राजधर्म सब जातिके लिये एक समान है, वह ब्राह्मण किसीसे कष्ट पाकर प्रार्थना करनेको आये होंगे, अथवा उनको चोरोंने लूट लिया होगा इससे रक्षा चाहने आये होंगे, अभी कोई बात तो मालूम हुई ही नहीं, यदि इस दशामें उनकी प्रार्थना नहीं सुनूँगा तो; प्रजा मुझे अच्छा नहीं कहेगी, इसकारण मुझे उनसे अवश्य ही मिलना चाहिये और उनका उचित सन्मानभी करना चाहिये, (द्वारपालसे) जा रे ! उनको राजसभामें आने दे (मंत्री से) सचिव ! उनके बैठनेके लिये मेरे दाहिनी ओर सुवर्णके सिंहासन मँगवाकर बिछवाओ।

मन्त्री-जो आज्ञा है महाराज ! (ऐसा कहकर सिंहासन बिछ जाता है)।

बौद्धादि सब पंडित दाँतोंसे ओठोंको चबाते और कानाफूसी करते हुए मौन होकर जहाँके तहाँ बठे रहते हैं, इतने हीमें ब्राह्मणोंके समूहके साथ भट्टपाद प्रवेश करते हैं, राजा उनके संमुख जा साथ लाकर आसन पर बैठाता है

राजा-(बड़ी प्रसन्नताके साथ प्रणाम करके) आपके दर्शन से मैं धन्य और परम कृतार्थ हुआ इस चरणधूलिसे मेरा घर पवित्र होगया (शरीरको रोमांचित करके) आहा ! यह कैसे आनंदका समय है, मानो इस आलसीके ऊपर, सकल जगत्का उद्धार करनेवाली और आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक इन तीनों तापोंको भस्म करनेवाली श्रीगंगाजीका प्रवाह आपड़ा! मानो राजसूय अश्वमेधादि अनेकों यज्ञ और बड़े२ व्रत करनेपर भी जो फल मिलना कठिन है वह सहजमेंही मेरे हाथमें आगया अधिक क्या कहूँ, आजके आनंदका मैं वर्णन नहीं करसकता, प्रतीत होता है मुझे अनेकों जन्मोंमें संचित करेहुए अपने सुकर्मों का यह फल मिला है, अच्छा कहिये महाराज ! कौनसी आज्ञा करनेके लिये आपने स्वयं यहांतक आनेका परिश्रम किया है, इस बातको जाननेके लिये यह दास उत्कंठित होरहा है।

सब जैनबौद्ध (कानोंपर हाथ रखकर) अर्हन् अर्हन् अर्हन् ऐसी भक्ति ! ऐसी स्तुति ! अरे चांडाल ! हमारे सामने ही तू ऐसा करता है (आकाशकी ओर देखकर) भगवान् सुगत ! गधोंको पकवान खिलानेवाले इस कुल कलंकका तुम नाश क्यों नहीं करते।

भट्टपाद-राजन् ! तुम सकल वर्णाश्रमोंका पालन करनेवाले हो, इसकारण केवल तुम्हारा दर्शन करनेकी इच्छा थी (मनमें) यह अनेकों बौद्ध पंडित बैठे है कोई कारण खड़ा करके इनके

साथ वाद विवाद करना चाहिये जब आये हैं तो कुछ तो करके चलैं [इतने हीमें एक कोकिल बोली उसके शब्दको सुनकर] धन्य कोकिले ! धन्य है तेरा स्वर कानोंको कैसा मधुर लगता हैं तेरे इस अलौकिक गुणसे लोगोंको तेरे ऊपर प्रीति करना चाहिये परन्तु लोग इसकारण तुझसे प्रीति नहीं करते कि नीच काकोंसे तेरा संग होगया है; नहीं तो जैसे लोग तोतेको पिंजरे रखकर आनंद पाते हैं, तैसे ही तुझको भी अपने पास रखते, कुसंग सकल गुणोंका नाश करके जहाँ तहां तिरस्कार कराकर दुतकारे दिलाता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यही है कि-यह राजा सुधन्वा कैसा गुणसम्पन्न, परमदयालु, दानशूर और सत्यप्रतिज्ञ है परन्तु इन नीच वेदनिन्दक बौद्धोंके संगसे लोग इसका तिरस्कार करते हैं (राजाकी ओरको) राजन् ! यह वेद-निंदक द्वेषपूर्ण बौद्ध तेरी संगतिके योग्य नहीं हैं, महारोग सहा जासकता है परन्तु इन नीचोंका मुख देखना सह्य नहीं होता, हे निष्कलंक राजन् ! तुझमें और इनमें बड़ा अन्तर है, तू रत्न समान है यह जहरीले पत्थरकी समान हैं तू राजहंसकी समान है यह काककी समान है इसकारण तुझको इनके संगसे बचना चाहिये ।

बौद्धकिशोर-(दुःखित होकर) अरे मिथ्याभाषी ! इस राजसभामें अतिथिकी समान आकर इस डरपोक राजाके देखते हुए, तू हम निष्पापोंकी निंदा करता है ? अरे नीच ब्राह्मण ! तुझे ऐसा बड़ा घमण्ड किसके भरोसे पर है ? अरे कृतघ्न ! हमारी ही पाठशालामें कपटरूपसे पढ़कर हमारे ही ऊपर फिर पड़ा है, समझ रख इन असंख्य पातकोंका दंड पाये विना तू इस राजसभाके बाहर जीवित नहीं जासकेगा ।

भट्टपाद-(हाथ उठाकर) अरे भ्रष्टपशु ! मैंने तुम्हारी शालामें पढ़कर तुम्हारे शास्त्रोंका भेद जानलिया है. अब मैं

केवल निंदा करके ही तुमको नहीं छोडूँगा, किंतु आज इस सभामें ही युक्तिरूपी कुल्हाड़ीसे तुम्हारे सिद्धांतरूप वृक्षके खंड खंड करके तुम्हें धूलिमें मिलादूँगा, अरे! आजतक तुमने जितने ब्राह्मणोंका इस थोथे मतसे तिरस्कार किया है उनमें मुझे न समझना, (छातीपर हाथ रखकर) किन्तु यह बौद्ध संतान धूमकेतु भट्टपाद है तुमको जो कुछ प्रश्न करने हों करो।

कल्किकंठाश-(आगेको सरकर) अरे भ्रष्टकुलसंगात ब्राह्मण! तू जिस मतका अभिमान रखकर इतना उन्मत्त हो ऐसा साहस करनेको उद्यत हुआ है, उसमें कौनसी बात सत्य है? शरीरपर राख मल, वनमें रहकर तथा निराहार व्रत रखकर वर्षा और धूपको सहनेसे यदि मुक्ति मिलती तो खाना पीना छोड़कर वर्षोतक धूप और वर्षाको सहने वाले पत्थर आज कहीं दीखते भी नहीं सबही मुक्त होगये होते, अरे! ऐसा भिखारी मत, गृहस्थोंको ठगकर पेट भरनेके लिये तुमने ही अपने मनसे गढकर चलाया है, क्या पण्डितजन कभी ऐसे मतका सन्मान करसकते हैं।

भट्टपाद-अरे नास्तिक! हमारे मतके तत्त्वको न जानकर अट्ट सट्ट बातें बनानेसे क्या तू मुझको जीत सकेगा! अरे! जड़ और चैतन्यकी एकता करनेवाला तू हमारे मतको क्या जान सकता है? मट्टी और कस्तूरीमें क्या भेद है ऐसा यदि किसी गधेसे बूझा जाय तो वह एकसा रंग होनेसे दोनोंको एक ही बतावेगा, सर्वत्र दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिककी पूर्ण समता नहीं होती है, इस बातको जो नहीं जानता है ऐसे वादमें यदि आगे बढ़े तो उसके दांत टूटेबिना नहीं रहसक्ते, इस लिये अरे महामूर्ख! पीछेको हट

बौद्धकिशोर-अरे बिना पूँछ सींगके पशु! तुम्हें मिष्टान्न खानेकी इच्छा होती है तो श्राद्धके बहानेसे पक्वान्न खाते हो और कहते हो कि इससे पितर तृप्त होते हैं, यदि यह सत्य है तो दीपक बुझजाने पर तेल डाल देनेसे वह दीपक फिर प्रज्वलित होजाना

चाहिये, तैसेही हम मांस भक्षण नहीं करते हैं; लोगोंको ऐसा ढङ्ग दिखाकर जब मांस भक्षणकी इच्छा होती है तब यज्ञके बहाने से हिंसा करके मांस खाते हो और कहते हो कि "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" अर्थात् वेदकी हिंसा हिंसा नहीं है किन्तु यज्ञमें बध किया हुआ पशु अपने बयालीस पूर्वजों सहित स्वर्ग को जाता है, फिर उस यज्ञके करने वालेको न जाने कितना फल मिलेगा? इसपर हम कहते हैं कि पितरोंको स्वर्ग देनेके लिये जो कहते हो उसमें अपने मा बापका बध क्यों नहीं करते हो? अर्थात् पशुके स्थानमें तुम्हारे मा बाप ही बयालीस पूर्व पुरुषों सहित स्वर्गको चलेजायँगे और तुम्हारी मांस भक्षणकी इच्छा भी पूरी होजायगी।

भट्टपाद-अरे! बकवादी! इसका उत्तर मैं तुझे थोड़े ही में देता हूँ, यह सब काम वेदके प्रमाणसे किये जाते हैं, और यज्ञ याग जप तप आदि सब साधन वेदने ही बताये हैं, इसकारण उन वेदोंकी अप्रमाणता सिद्ध करे बिना इनमें कहेहुए कर्म असत्य सिद्ध नहीं होसकते, यदि शक्ति हो तो वेदकी अप्रमाणता सिद्ध करो

अमरसिंह-(बीचमें ही) मित्रों! अब गड़बड़ न करो, अब मेरे हाथमें आगया, अब मैं इसको बौद्धमतकी निंदाका क्या फल मिलता है सो दिखाये देता हूँ अरे बैल! तू जिन वेदोंको पवित्र मानता है उन वेदोंके ऊपर लात मारने वाले हम बौद्ध क्या उन वेदोंको अप्रमाण कहनेमें डरते हैं? मैं स्पष्ट कहता हूँ कि-तुम्हारे वेद असत्यका भण्डार हैं नहीं तो उनकी सत्यता दिखा

भट्टपाद-अरे बौद्धबालक! बता किस प्रकारकी सत्यता देखना चाहता है, परन्तु वादकी रीतिको न छोड़ना।

अमरसिंह-अरे ब्राह्मणके बालक! उन वेदोंका जो अर्थ हो उसकी सत्यता प्रत्यक्ष करके दिखा, तब तेरी बात ठीक है।

भट्टपाद–अरे वाचाल ! वेद अनन्त हैं, उनमेंसे हरएक अर्थ की सत्यता दिखानेके लिये तो असंख्यों वर्ष चाहियें, फिर हमारे इस विवादका निर्णय कैसे होगा ? ।

अमरसिंह–अरे ! पकते हुए भातके सब कण नहीं देखे जाते हैं, किन्तु एक कण देख लेनेसे ही 'मालूम होजाता है तैसे ही अपने वेदोंमेंके किसी एक अर्थकी तो सत्यता दिखा बस हम मानलेंगे ।

भट्टपाद–(संतुष्ट होकर) यह कौन बात है ? अरे नीचो ! मेरी विजय तो होगई (राजासे) राजन् ! आप मध्यस्थ होकर देखिये, अब मैं इनको जीते लेता हूँ, अरे वेद-निंदक नीच बौद्ध ! मैं कहता हूँ, इस श्रुतिके अर्थपर ध्यान दे ।

अमरसिंह–दिया दिया, बोल अब वह कौनसी श्रुति है, मैं सब जानता हूँ, तुम्हारे वेदकी बकबकमें ईश्वरके सहस्र मुख चार सहस्र चरण, बस ऐसी ही बातें भरी हैं, उनमेंसे तुझे कौनसी सत्यार्थके श्रुतिका स्मरण है बोल ? ।

भट्टपाद–तो क्या ऐसा हो नहीं सकता है? सुन-'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' क्योंरे मिथ्याभाषी ! इस श्रुतिका अर्थ तू जानता है ?

अमरसिंह– मेरे जाननेको रहने दे, तू ही बता, इस श्रुतिमें क्या बकवाद है ।

भट्टपाद–अरे अधम ! 'अग्निः' आग 'हिमस्य' शीतकी 'भेषजम्' औषध है; अब इसकी सत्यताको तू अपने आप प्रत्यक्ष करदेख, मनुष्यको शीत लगनेपर, अग्निकुण्डके समीप जाकर तापनेसे शीत जाता रहता है, क्यों वेद प्रमाणभूत होकर उसमें कहेहुए सकलधर्म सत्य होनेपर, उसकी निन्दा करने वाले तुम दंडके योग्य हो या नहीं (इतना कहते ही सब ब्राह्मण-जीत लिया, जीतलिया ऐसा कहकर तालियें बजाते और अँगोछे उछालते हुए बड़ाभारी कोलाहल करते हैं)

सब बौद्ध (बहुत चिल्लाकर) ऐसे निर्णय नहीं हुआ, यह हमारी बनाई श्रुतिके अर्थको सत्य करके दिखावें (ऐसा कहकर वह भी बड़ी कलकल करते हैं, इसप्रकार कोलाहलसे सब सभा गूँज उठी)।

राजा-(सब कोलाहल शांत होनेपर बौद्ध पंडितोंसे) क्यों पण्डितों ! तुम वादमें हार गये, ब्राह्मणोंने तुमको जीत लिया अब तुमको और मुझ दोनोंको इनका शिष्य होना उचित है।

बौद्धकिशोर-(खिझाकर) अरे निर्लज्ज ! यह क्या कहता है ? ऐसा यह बौद्धमत ! क्या एकाध श्रुतिसे खंडित होसकता है। हम स्पष्ट कहते हैं कि-इस श्रुतिको नहीं मानते,हम बतावें.उस श्रुतिके अर्थको यह सत्य करके दिखावें।

राजा-(विचारकर) हाँ तो अब वादकी आवश्यकता नहीं है; मतके सत्य असत्य होनेमें मैं दैवी प्रमाण निकालता हूँ, वह यह है कि यह नगरके समीपका पर्वत बहुत ऊँचा है, उसके ऊपरसे नीचेको कूदकर जो जीवित रहेगा. उसका मत ही सच समझा जायगा तुम कूदो चाहें ब्राह्मण कूदें।

सब बौद्ध-(आपसमें) क्यों भाई ! राजाने यह युक्ति तो अच्छी निकाली, अब उसको ही पर्वतके ऊपरसे कुदाओ बस यह दुष्ट अनायासमें ही मरजायगा ऐसे ऊँचे पर्वतके ऊपरसे गिरकर मनुष्य जीता रह ही नहीं सकता, हाँ तो अमरसिंहजी तुम ही इस विषयमें राजासे कहो।

अमरसिंह-अच्छी बात है (राजासे) महाराज ! बात ठीक है और हम इसको स्वीकार करते हैं, परन्तु वाद करनेको ब्राह्मण आया है, इस कारण पहिले इसीको ही कूदना चाहिये

राजा-हे महाराज भट्टपादजी ! मेरी कही हुई परीक्षा देनेको तयार हो क्या ?

भट्टपाद-(खड़े होकर) तयार होनेकी क्या बूझते हो, विलम्ब न करिये अब ही चलिये (ऐसा कहकर सब ब्राह्मणों के साथ चलने लगते हैं)

(पर्वतके समीप पहुंचने पर)

राजा-(शीघ्रतासे) चलो तो सब पर्वतके समीप चलें [सब बौद्ध भी चलने लगते हैं]

राजा-हे ब्राह्मणकुलभूषण ! यह पर्वत यही है इसके ऊपर से छलांग मारकर यदि तुम अक्षत रहोगे, तो तुम्हारे मतको यह बौद्ध सच्चा मानेंगे।

भट्टपाद-बहुत अच्छा, (ऐसा कहकर पर्वतके ऊपर चढ़, हाथ जोड़े खड़े होकर) हे वेदपुरुष ? तुम्हारे उद्धारके लिये मैं यह साहस करता हूँ अब यश देना तुम्हारे ही अधीन है। हे कैलाशनाथ शिवजी ! कृपा करिये। अब राजा, सकल बौद्ध, सकल ब्राह्मण और अन्य सकल कौतुकी पुरुष भी मेरी प्रतिज्ञा को सुनो, (ऊँचे स्वरसे) यदि वेद प्रमाण हों यह पातकी बौद्ध निंदित हों तथा सकल ब्राह्मण पूजनीय हों तो इस गिरने में मेरे शरीरको कुछ भी कष्ट न हो, अब सब देखें जय शिव-शंकर जय। (ऐसा कहकर छलांग मार किसी प्रकारका कष्ट न पाता हुआ पृथ्वीपर अक्षत खड़ा होता है)।

राजा-(समीपमें आश्चर्यके साथ देखकर) धन्य धन्य भट्ट-पाद धन्य निःसन्देह तुम्हारा धर्म सत्य है (ऐसा कहकर हृदय से लगाता है)

कविकंठराश-(दुःखित होकर) राजन ! यह क्या बालकों कासा खेल कररहे हो इस प्रकार क्या तुम मतका निर्णय कर सकते हो। अरे ! मणि, मंत्र, औषध आदिसे ऐसे काम हो सकते हैं। कलको कोई मल्ल आकर इससे भी अधिक ऊँचेसे

छूटजायगा तो क्या उसका मत सच्चा होजायगा ? अर्हन् अर्हन्! हम तुम्हारे ऐसे असार वर्तावको कभी स्वीकार नहीं करसकते!

राजा-(नेत्रोंको लाल २ करके) अरे आजतक मैंने तुमसे कोई पोच बात नहीं कही, परन्तु अब मैं स्पष्ट कहता हूँ कि तुम महापातकी अधम चांडाल हो, तुमको यह बात माननी नहीं थी तो इस ब्राह्मणको ऐसा साहस करनेका परिश्रम क्यों दिया ? अच्छा मूर्खो ! अब तुम्हारा निपटारा करता हूँ [ऐसा कहकर मंत्रीको बुला उससे एकान्तमें कहता है] मंत्री विजयपाल ! मैं जो कुछ कहता हूँ उसको अभी तत्काल इस प्रकार ठीक करलाओ कि कोई जानने न पावै ।

मंत्री-महाराज ! जो आज्ञा होगी उसको अभी ठीक करलाता हूँ ।

राजा-[मंत्रीके कानमें कहता है] एक ताँबेके कलशमें शिकारखानेमेंका काला सर्प इस प्रकार बंद करलाओ कि कोई जानने न पावै और उस कलशका मुख अच्छे प्रकार बंद करके अभी सभामें लेआओ. चलो उठो देर न करो ।

मंत्री-[भीतर जाकर मुख बँधा हुआ कलश लिये लौटकर आता है] महाराज ! आज्ञानुसार यह कलश तयार होकर आगया ।

राजा अच्छा, इसको बीचमें रक्खो ।

(आज्ञाके अनुसार मन्त्री कलश रखता है)

राजा-[ऊँचे स्वरसे] अब मेरी अंतकी प्रतिज्ञाको सब सुनलो [कलशकी ओरको अंगुली उठाकर] इस ताँबेके कलशमें कोई वस्तु मैंने अपने आप गुप्तरूपसे रक्खी है बताओ वह क्या है ? जो सत्य कहेगा उसके ही मतको मैं सच्चा मानकर प्राणोंसे भी अधिक समझूँगा और जो मिथ्या-वादी ठहरेगा उसका बीज नाश करदूँगा, उसके कुटुँब भरको मरवादूँगा, और अपनी इस

प्रतिज्ञामें अंतर करूँ तो अपने बयालीस पूर्व पुरुषों सहित नरक पाऊँ बौद्ध पंडितों ! अब मैं किसीकी भी हैं हैं, हैं नहीं सुनूँगा शीघ्र बताओ इसमें क्या है ?

सब बौद्ध-[आपसमें] अब तो भाई बडी टेढी खीर होगई इस छिपी हुई वस्तुको कैसे समझ सकेंगे हे अर्हन् ! गुरो अब तुम ही रक्षा करोगे ।

अमरसिंह-अरे भाई ! इतनी पंचायतमें क्यों पडते हो, एक क्षपणकधर्मी रम्भाल मेरा मित्र है वह शकुन देखकर चाहे जैसी गुप्त वस्तुको बता देता है, बस राजासे आजके दिनकी छुट्टी माँगलो, रातको इसमेंकी वस्तु क्षपणकसे बूझकर प्रातःकाल आते ही बतादेंगे, और काम सिद्ध होजावेगा कहदो राजासे ।

बौद्धकिशोर-हे महाराज ! आपने परम दुःखित होकर ऐसी प्रतिज्ञाकी है परन्तु विचारे विना हम इसका उत्तर नहीं देसकेंगे इस लिये कृपा करके हमको आजके दिनकी छुट्टी दीजिये, बस कलको आतेही इस घटमें जो वस्तु है बतादेंगे ।

राजा-[भट्टपादकी ओरको मुख करके] क्यों महाराज ! इस बातमें तुम्हारी कोई हानि तो नहीं है, यह कल उत्तर देने को कहते हैं ।

भट्टपाद-राजन ! मेरी ओरसे तो तिल भर भी विलम्ब नहीं है, मुझसे कहिये तो इसमें जो वस्तु है इसी समय बतादूँ यह कलको बताने कहते हैं तो यों ही सही और रात भर जीलें

राजा-अच्छा तो चलिये कल सूर्योदय होते ही सब यहाँ इकट्ठे होजायँ [मंत्रीसे] विजयपाल ! प्रातःकालसे पहिले २ अपने लशकरमेंके सब सवार और सिपाही तोपखानेको लेआवें और सभाके भरते ही राजमहलके चारों ओर खडे होजायँ, क्योंकि-दोनोंमेंसे एक पक्षको तो प्राणान्त दण्ड देना ही होगा इस लिये तुम तयारीके लिये अभीसे सावधान रहो [कुछ देर

विचारकर] हां ! कलशमेंकी वस्तुको तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं जानता है, अतः कहदेता हूँ कि यदि किसीने वह भेद जानलिया तो तुम्हारा शिर कटवालूँगा अच्छा तो अबसब चलें [सब जाते हैं]।

—o—

चतुर्थ-दृश्य ।

(तदनन्तर मलिनमुख रोता हुआ विदूषक आता है)

विदूषक-(आप ही आप) न जाने मेरे भाग्यमें क्या लिखा है ! बौद्धाचार्योंके साथ रहनेसे रूपवती स्त्रियोंके हाथोंसे उत्तम पकवान खानेको मिलते हैं, काम नहीं धाम नहीं, पहिले तो बस्तीके देवमंदिरमें पड़ा रहता था, झाड़ बुहारी देनेसे एकबार ही खानेको मिलजाता था, अब तो दिनमें दोबार भोजन मिलता है, इसी कारण तो ब्राह्मणसे जैन होगया हूँ, परन्तु अब मेरा भाग्य फूट गया, क्योंकि कोई भट्टपाद ब्राह्मण बौद्धोंका विध्वंस करनेको उद्यत होगया है कलको सब बौद्ध और जैनोंके प्राण बचना कठिन हैं चारों ओर यही चर्चा फैल रही है अब मैं क्या करूँ।

(इतने ही में हंसता हुआ सूत्रधार आता है)

सूत्रधार- अरे ! मित्र क्या हु आ ? कहो तो सही किसकारण रोते हुएसे दीख रहे हो ।

विदूषक-भाई तुम भाग्यशाली हो, मैं तुम्हारी हँसी करता था और तुम्हारे सामने अपने सुखकी डींग मारता था, परन्तु तुम अपने धर्मको न छोड़कर ब्राह्मण ही रहे परन्तु मैं उस बौद्ध संन्यासीकी बातोंमें आकर झगड़ेमें पड़गया ऐसा कहकर अति ऊँचे स्वरसे रोता है)

सूत्रधार-अरे तो ऐसा क्यों घबडा रहा है ? ऐसी कौनसी विपत्ति आगई जो चीख मार २ कर रोता है ?।

विदूषक-अरे! कलको मारे जायँगे फिर रोऊँ नहीं तो क्या करूँ? भाई! तुम्हारे जाने क्या है; जिसपर पड़ती है वही जानता है।

सूत्रधार-भाई! मुझे तो मालूम नहीं कि तुम्हारे ऊपर ऐसी कौनसी विपत्ति आई है।

विदूषक-तुम्हें काहेको मालूम होगा? चतुर हो ना! सुनो बौद्ध जैनोंका ब्राह्मणोंके साथ वाद विवाद हुआ था।फिर कलशमें कुछ डालकर, राजाने सभामें रख दिया है, उसको जो नहीं बता सकेगा वही कल मारडाला जायगा, इस कारण ही मैं रोता हूँ।

सूत्रधार-अरे! ऐसा क्यों घबड़ाता है, भला तूने यह कैसे जान लिया कि बौद्ध जैन पंडितोंका ही पराजय होगा?

विदूषक-भाई! कोई भट्ट पैरोंका ब्राह्मण है, उसको दिव्य ज्ञान है इस कारण वह सहजमें ही इनको हरादेगा ऐसा ज्ञान हमारे भोजनप्रेमी भाइयोंको है नहीं।

सूत्रधार-अरे! उन्होंने क्षपणक नाम वाले शकुनियेसे उस वस्तुको जान लिया है, परन्तु देखो कल क्या होता है।

विदूषक-तब तो फिर मैं अब किसी देवतासे भी नहीं डरूँगा कलको एक उपासकके यहाँ हमारे यतिजीका निमंत्रण है तहाँ खीर पूरी खाऊँगा और आनन्दसे मठके भीतर पैर फैला कर सोऊँगा।

सूत्रधार-परन्तु मित्र अब कौतुक देखनेके लिये राजमहलको क्यों नहीं चलते? देखो वह सब बौद्ध जैनोंके झुंड और ब्राह्मणोंके समूह जैसे छत्तेपर मक्खियें जाती हैं तिसी प्रकार राजमहलकी ओरको चले जारहे हैं, चलो तो चलो नहीं मैं तो जाता हूँ।

विदूषक-नहीं भाई मैं तो नहीं जाऊँगा कहीं बौद्ध जैनोंकी हार होगई तो मुझको भी सूलीपर चढादेंगे, इस लिये मैं तो भागा जाता हूँ यदि बौद्ध जैन हार गये तो ब्राह्मण बन जाऊँगा नहीं जैन तो बनाबनाया ही हूँ। [ऐसा कहकर भागता है और सूत्रधार भी दूसरी ओरको जाता है]।

—०—

पञ्चम-दृश्य

(राजा सुधन्वा मन्त्रीका हाथ पकड़े हुए आता है)

राजा-मन्त्रिवर! वह कलश भंडार खानेसे मँगवाकर यहाँ रखवाओ और सबोंको बुलानेके लिये सिपाही भेजदो

मन्त्री-श्रीमहाराज! आज्ञाके अनुसार कलश मँगाकर रख दिया है, [कलशकी ओरको अंगुली दिखाता है] अब सिपाही भेजनेकी कौन आवश्यकता है यह बौद्ध जैन पंडित सब आही गये और ब्राह्मण भी आते ही हैं।

राजा-(घबड़ाकर) अहो मन्त्रिन्! इन बौद्ध जैनोंके मुखों को देखकर अनुमान तो करो, प्रसन्न हैं या निस्तेज ?

मंत्री-(परदेमें देखकर) महाराज! इनके मुख तो प्रसन्न से दीखते हैं इससे मालूम होता है कि यह निर्भय हैं।

राजा (लंबी श्वास छोड़कर) क्या इन नीचोंने कलशमेंकी वस्तुको जान लिया ? प्रधानजी! यदि ऐसा हुआ तब तो बड़ी कठिनता होगी, क्योंकि प्रतिज्ञा मैंने बड़ी दारुणकी है।

मंत्री-महाराज! आप भय न करें, जैसे पहिले दो बार ब्राह्मणोंको यश मिला है तैसे ही अब भी मिलेगा।

राजा-हाँ! मैंने कल जो कहा था तदनुसार सेना तो तयार है न ?

मंत्री-महाराज ! आज्ञाके अनुसार सब ठीक है, किसी प्रकारकी चिंता न करिये।

(इतने हीमें ब्राह्मण बौद्ध जैन आकर अपने २ स्थानपर बेठते हैं)

राजा-(सब सभाको भरी हुई देखकर) मैं दोनों ओरके पंडितोंको प्रणाम करता हूँ।

ब्राह्मण और जैन-(एक साथ) सदा जय हो।

राजा-प्रधानजी ! अब मेरी अंतकी प्रतिज्ञा इन दोनों वादियोंको सुनादो।

मन्त्री-जो आज्ञा [ऐसा कह खड़े होकर] मेरे कथनको सब पण्डित सुनलें [ऊँचे स्वरसे] ब्राह्मणोंके साथ बौद्ध जैनों के मत विषयमें वाद विवाद होकर अंतमें श्रीमहाराजाधिराज ने यह विचार करलिया है [कलशकी ओरको अंगुली करके] कि इस कलशमें श्रीमहाराजने अपने आप जो गुप्त वस्तु रक्खी है; उसको जिस पक्षके पुरुष बतादेंगे उसका मत सच्चा और जो न बता सकेंगे उनका मत झूठा समझा जायगा, और जो झूठे ठहरेंगे उनको कुटुम्ब सहित प्राणान्त दण्ड देनेके लिये श्रीमहाराज तोपैं मँगवाकर खड़ी करली हैं और राजमहलके मैदानमें शूली तथा फांसी देनेके खंभे खड़े करदिये गये हैं, यह बात सब देखलें तब जिन को जो कुछ कहना हो कहैं एकवार मुखमेंसे अक्षर निकल जानेपर वह राजकृपा या राजदंडके पात्र हुए विना नहीं बचेंगे और फिर उनकी दूसरी कोई बात नहीं सुनी जायगी [ऐसा कहकर अपने आसनपर बैठता है]।

राजा-सबोंने मेरी प्रतिज्ञा तो सुनही ली तो अब मैं फिर प्रश्न करता हूँ हे बौद्ध पंडितों ! इस कलशमें क्या है बताओ ? ।

बौद्धकिशोर-(बड़े आनन्दके साथ आगेको बढ़कर श्रीमहाराज ! इस कलशमें महासर्प है।

राजा—(यह सुनकर सिंहासन परसे नीचे गिरता है और सेवक उठाते हैं)

मन्त्री—(घबड़ाया हुआ समीप आकर) महाराज ! सावधान हूजिये, सावधान हूजिये कौन है रे ? शीघ्रतासे जल ला [सेवक पानी लेकर आता है और मन्त्री उसको राजाके नेत्रों में लगाता है]।

राजा—[सावधान हो माथे पर हाथ रखकर] शिव ! शिव! मैंने कैसा चांडाल कर्म किया है ! मैं कितना अधम पातकी हूँ ! देव ! मुझ अपयशी पुरुषको ऐसा राज्य क्यों दिया था ! जिन ब्राह्मणोंको दुःखसे छुटानेके लिये मैं उत्कंठित रहता था, हा ! क्या अब उनको मैं मरवाऊँ ! नहीं नहीं चाहें यह मेरा शरीर न रहै, चाहें मेरे पितर नरकमें जायँ परन्तु मैं ऐसा कुकर्म कदापि नहीं करूँगा, हे चन्द्रभाल शंकर ! अब अपना शिरश्छेदन करडालनेके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है (ऐसा कह गरदनके ऊपरको तलवार उठाता है)

भट्टपाद—(घबड़ाए हुए आगे जाकर) हैं हैं, हे सत्यप्रतिज्ञ राजन् ! यह क्या करते हो ? (ऐसा कहकर तलवार छीनते हैं) महाराज ! वादका निबटारा करे विना यदि प्राण खोदोगे तो नरकमें पड़ोगे, इस लिये केवल एक ओरकी बात सुनकर ही निर्णय न करो, इस कलशमें बौद्धोंकी बताई हुई वस्तु नहीं है, जो कुछ है उसको मैं बताता हूँ ।

राजा—अब क्या सुनूँ (ऐसा कहकर माथेपर हाथ रखता है) अच्छा महाराज ? कहिये २ इसमें क्या है ?

भट्टपाद—इसमें सर्प नहीं है, किंतु उस सर्पके ऊपर शयन करने वाले श्रीनारायणकी ताम्रमयी मूर्त्ति है निकाल कर देखो

राजा—मन्त्री ! खोलो इस कलशका मुख ।

मन्त्री जो आज्ञा [ऐसा कहकर कलशका मुख खोलता है और उसके भीतर सर्प न निकलकर ताम्रमयी विष्णु मूर्ति निकलती है]।

राजा-[देखते ही आश्चर्य और आनन्दसे प्रफुल्लित होकर] आहा हा !! [ऊपरको मुख करके] हे परमो पुराणपुरुष ! तुम्हारी शक्ति अपार है तुम्हारी माया ब्रह्मादिकोंको भी चकित करती है, फिर औरोंकी तो बात ही क्या ? [ब्राह्मणोंकी ओर को फिरकर] आहा ! यह कैसा चमत्कार है, मैंने अपने आप सर्प डाला था इन बौद्ध जैनोंने भी सर्प ही बताया था परन्तु हे भगवन् ! क्या इन ब्राह्मणोंको यश देनेके लिये ही यह सर्पसे मूर्त्ति होगई ? इससे सिद्ध होता है कि मैं जो कुछ करना चाहता हूँ, उसमें तुम्हारी ही इच्छा है [मन्त्रीसे क्रोधमें होकर] मन्त्री ! अब देखते क्या हो ? दूतोंको बुलाकर इन चांडालोंकी मुशकें बँधवाओ इनको यहाँके यहीं मरवादो घसीटो २ इनको मेरे नेत्रोंके सामनेसे घसीटकर लेजाओ [दूत आकर सबकी मुसकें बाँधकर भीतरको खचेडे हुए लिये जाते हैं, फिर परदेके भीतर बड़ा हाहाकार होता है धड़ाधड़ तोपोंका शब्द होता है तथा अनेकों जैन बौद्ध मारे जाते हैं]।

मन्त्री-(हाथ जोडे हुए आगे जाकर) श्रीमहाराजकी आज्ञाके अनुसार सबको दंड देदियागया।

राजा-(आनंदके साथ) किस २ को क्या २ दंड दिया।

मन्त्री-पृथ्वीनाथ ! सुनिये बौद्धकिशोर, अमरसिंह कविकंठपाश और जैनेन्द्रकिशोर आदि जो बड़े २ तीनसौ पंडित इस सभामें रत्नजटित सिंहासनोंपर बैठते थे उनको तोपके मुखसे बाँधकर एक साथ उडादिया, शेष सातसौ पंडित जो सोनेके सिंहासनपर बैठते थे उनको सूलीपर चढ़ा दिया तथा और जो बहुतसे थे उनमेंसे कितनों हीको फाँसी देदी और कितने हीको

शिरश्छेदन करा दिया, एवं नगरमेंके सकल बौद्ध जैनोंको दंड देनेके लिये दूत भेज दिये हैं और उनको दण्ड देनेका काम बराबर होरहा है।

राजा-(प्रसन्न होकर) हाँ दुष्टों! तुमको उचितही दण्ड मिला

मन्त्री-श्रीमहाराज! अब क्या आज्ञा है?

-सेतुबंधरामेश्वरसे लेकर हिमालय पर्यन्त, इधर पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र पर्यन्त बौद्ध जैनोंकी स्त्रीहों बालक हो, बूढ़े हों, तरुण हों सबोंको बेखटक पकड़ कर यमराजका अतिथि बना दो, यही मेरी आज्ञा है और राज्यमें ढँढोरा पिटवादो कि जो बौद्ध जैनों को आश्रय देगा उसका कुटुम्ब निर्मूल करा दिया जायगा 'चाहें सबको छोड़दो परन्तु बौद्ध जैनोंको न छोडो' ऐसी आज्ञा लिख मुहर लगा सर्वत्र भेजदो

मन्त्री-जो आज्ञा श्रीमहाराजकी [ऐसा कहकर जाता है]

राजा-मुनिवर! आपकी कृपासे मैं इन नीचोंके संगसे छूट गया। कहिये आगेको अब और क्या आज्ञा है?।

भट्टपाद-राजन्! जबतक सूर्य चन्द्रमा रहेंगे तबतक तुम्हारी कीर्त्ति रहेगी, अब मैं मंडनमिश्रकी सहायतासे कर्मकांडकी प्रवृत्ति करूँगा अब हमारे कार्यमें कोई विघ्न नहीं करसकेगा, अच्छा तो अब मैं जाता हूँ [ऐसा कहकर सब ब्राह्मणोंके साथ उठकर खड़े होते हैं]।

राजा-(उठकर नमस्कार करके) महाराज! इस दासानुदासके ऊपर अनुग्रह बनाए रखिए।

भट्टपाद-राजा तेरे ऊपर तो सर्वेश्वर परमात्माकाही अनुग्रह है नहीं तो यह यश क्योंकर मिलता अच्छा अब हम जाते हैं, आप बैठिये (ऐसा कहकर सबके साथ चलने लगते हैं)।

राजा-मैं भी आपको पहुँचानेके लिये राजद्वारतक चलता हूँ।

(ऐसा कहकर सब जाते हैं)

तृतीय-अंक ।

प्रथम-दृश्य-केरल-देशका एक ग्राम ।

(भोजनसे निवटकर डकारें लेते हुए शिवगुरुका प्रवेश।

शिवगुरु-(पेटपर बायाँ हाथ फेरकर)

आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महाबलः ।
अगस्त्यस्य प्रसादेन भोजनं मम जीर्यताम् ॥

[ऐसा कहकर आसनपर बैठते हैं] हे जगदीश्वर ! इस ब्रह्माण्डको रचने वाली आपकी माया बड़ी प्रबल है ! इस संसारमें आप किसीको सुखी नहीं रखते हैं जिनको विद्या है उनको अन्न नहीं है जिनको पूरा २ अन्न वस्त्र प्राप्त है उनको विद्या नहीं है । हे परमेश्वर ! इस त्रिलोकीमें आपके सिवाय दूसरा कोई सुखी नहीं है, मेरे पास पूरी२ सम्पत्ति है, विद्या है और स्त्री भी सुन्दरी सुशीला चित्तके अनुकूल वर्त्ताव करनेवाली है, परन्तु वंशको चलाने वाली संतान नहीं है, यह चिंता मेरे सब सुखोंको नष्ट करके शरीरको भी झुलसाये देती है, यह देखो वह चम्पकवदनी भोजनसे निबटते ही मेरे लिये ताम्बूलका पात्र लारही है हे शिव ! इस चन्द्रवदनीके मुखको भी तो पुत्रकी चिंताने पीड़ित करडाला है ।

(हाथमें पानोंका डब्बा लिये हुए विशिष्टा आती है)

शिवगुरु-आओ प्रिये ! क्या इतने हीमें भोजन जीमलिया ? मुझको प्रतीत होता है तू पेटभर भोजन भी नहीं करती है (इतना कह हाथ पकड़कर समीप बैठाते हैं) ।

विशिष्टा-(नीचेको मुख करके) नाथ ! स्त्रियोंको भोजन जीमनेमें देरही कितनी लगती है ?

शिवगुरु प्रिये ! मैं समझता हूँ पुत्रचिन्ताकी समान दूसरा कोई रोग नहीं है, चितासे चिंतामें एक बिन्दु अधिक ही है यही

कारण है कि चिता तो मरे हुएको भस्म करती है परन्तु चिंता जीतेहुएको ही निरन्तर जलाती रहती है ।

विशिष्टा प्राणनाथ ! यह चिंता अकेली मुझको ही नहीं आपको भी दुःखित रखती है ! मैं ऊपर दिखाती हूँ और आप हृदयकी हृदयमें ही रखते हैं बस इतना ही अन्तर है।

शिवगुरु प्रिये ! सत्य कहती है, यही दशा है !, सन्तानके विषयमें पुरुषोंको स्त्रियोंकी समान अधीर होना शोभा नहीं देता है, परन्तु मैं सत्य कहता हूँ कि मुझको भी धीरज नहीं है क्योंकि वेद कहता है पुत्रहीनकी परलोकमें सद्गति नहीं है और अब सन्तान होनेकी तो कुछ आशा ही नहीं है, व्रत जप आदि सब ही कुछ कर छोड़ा परन्तु मनोरथ पूरा नहीं हुआ इसकारण अब मेरे चित्तमें तो वैराग्यसा होरहा है सो मैं तो अब संन्यास धारकर परम तत्त्वका विचार करता हुआ आयुके शेष रहे हुए दिनोंको विताऊँगा ।

विशिष्टा--(खिन्न होकर) आप तो संन्यास धारकर या और चाहे जो कुछ करके अपने शरीरको सफल कर ही लेंगे, परन्तु मेरी कौन गति होगी, इसकी आपको कुछ चिन्ता नहीं है ! हाँ ! मेरे चित्तमें एक बात और आती है सुनो तो कहूँ ?

शिवगुरु–हाँ हाँ ! अवश्य कहना चाहिये, यदि जचेगा तो उसको भी कर देखूँगा ।

विशिष्टा–इस ग्राममें आजकलही एक शिवजीकी मूर्ति अपने आप प्रकट हुई है उसकी बड़ी जागती कला है, सब ग्राम उस विग्रहमूर्तिका पूजन करता है, सो चलो हम दोनों भी सब प्रपंच और घरद्वारको छोड़कर उस देवमंदिरमें रहते हुए उन शंकर भगवान्‌की भक्ति करें और यह अटल प्रतिज्ञा करलें कि मनोरथ पूरा हुए विना घरको नहीं जायँगे और अन्न जल भी नहीं करेंगे ऐसे नियममें यदि प्राण भी जाते रहेंगे, तो कुछ

चिन्ता नहीं क्योंकि दूसरे जन्ममें तो पुत्रहीन नहीं होंगे, आगे जैसी आपकी इच्छा हो।

शिवगुरु-ठीक ठीक, बहुत ठीक है परन्तु प्रिये! तुमसे यह साधना होना कठिन है, क्योंकि एक दिनका भी निराहार होने पर तुम अशक्त होजाओगी, उठना बैठना भी कठिन होजायगा इसकारण तुम घरको सम्हालो और मैं शिवालयमें जाकर तपस्या करता हूँ।

विशिष्टा प्राणनाथ! आप ऐसा विचार न करें, इस विषय में मैं आपसे अधिक दृढ हूँ, मेरी कुछ चिंता न करिये, मैं तो पहिले ही निश्चय करचुकी हूँ, इसकारण किसी प्रकार घर नहीं रह सकती, आपकी इच्छा हो तो घर रह जाइये।

शिवगुरु-अच्छा तो (परदेकी ओरको देखकर) कौन है रे? इतना सुनते ही सुबुद्धि नामक शिष्य आता है)।

सुबुद्धि-गुरुजी! क्या आज्ञा है?

शिवगुरु-देखो भैया! हम दोनों! देवमन्दिरमें जाकर तप करेंगे, इसमें हमको जितने दिन लगेंगे तबतक घरकी सब देख भाल तुम्हारे ऊपर छोड़ते हैं, देखो प्रतिदिन देवालयमें जाकर हमारी सुध लेते रहना और अग्निहोत्रकी व्यवस्था ठीक रखना

सुबुद्धि (हाथ जोड़कर) महाराज! यह दास हरसमय आज्ञा पालन करनेको तयार है।

शिवगुरु-जरा पञ्चाङ्ग तो ला, देखूँ आजका दिन कैसा है

सुबुद्धि-लाया महाराज! (ऐसा कहकर भीतर जाता है और पञ्चाङ्ग लाकर शिवगुरुके हाथमें देता है)

शिवगुरु-(पञ्चाङ्ग देखकर) अरे वाः आज तो बुधवारमें अनुराधा नक्षत्र होनेसे अमृतसिद्धियोग है; प्रिये! चलो आज ही देवमंदिरमें चलकर नियमका आरम्भ करें।

विशिष्टा मैं तो तयार हूँ (ऐसा कहकर सब जाते हैं)।

द्वितीय दृश्य-भूलोक-मायापुरी।

(चारों ओर अन्धकार छारहा है)।

(गम्भीरभावसे माया बैठी है और उसके सन्मुख प्रारब्ध खड़ी है)

माया-(लंबी सांस लेकर) हे प्रारब्ध ! इस अनंत संसार में तू धन्य है, भूतलपर तेरी लीलाकी बलिहारी हूँ।

प्रारब्ध-मैया ! तेरी कृपाके बिना मेरी क्या शक्ति है ? मैया ! भला मैं कौन कार्य करसक्ती हूँ ! जिस शक्तिके प्रभावसे मैं त्रिलोकीमें विजय पाती हूँ उस शक्तिकी मूल तो तू ही है अरी मा महामाये ! तेरी कुछ एक चेष्टासे ही अनन्त संसार मोहमें पड़ा है, जगत् भर कठपुतलीकी समान तेरे अधीन है।

माया-अरी प्रारब्ध ! मैं तो बड़े जंजालमें पड़ रही हूँ रक्षा पाने का कोई उपाय नहीं दीखता, एक ओर तो ब्रह्माजीकी आज्ञा, कि ज्ञानामृत पीकर पात्र अपात्र सब मुक्त हों, परन्तु दूसरी ओर देखती हूँ तो ऐसा होनेसे मंगल नहीं है यदि संसारमें दुःख नहीं होता तो सुखका आदर कौन करता ? जीवके लिये तो सुख दुःख दोनों ही चाहियें, नहीं तो संसारकी मर्यादा कैसे रहसकती है इसीकारण कहती हूँ कि इस सदाके नियमके टूटने पर न जाने क्या फल होगा !

प्रारब्ध-मैया ! तू इच्छामयी है. जो इच्छा करेगी वही सिद्ध होगी, अब क्या मैं ब्रह्माजीसे यह सब निवेदन करदूँ ?

माया हाँ ! उनसे कहना कि जगत् भरके पूर्ण ज्ञान पाने पर संसारकी सृष्टि करना ही निरर्थक होजायगा, क्योंकि ज्ञान और अज्ञान दोनों ही होनेसे संसार ठहर सकता है, जैसा कि पहिले से चला आता है, हां श्रीशंकरके प्रभावसे इतना विशेष होना चाहिये कि ज्ञानकी वृद्धि हो उसके प्रकाशमें महापापी भी मोहान्ध नेत्रोंको खोलकर अपनी दशाको देखें।

प्रारब्ध मैया! जो तुम्हारी आज्ञा, अच्छा तो अब मैं जाकर यह सब समाचार-ब्रह्माजीको सुनाती हूँ।

माया-मैं आशीश देती हूँ कि तेरा मनोरथ सफल हो।

प्रणाम करके प्रारब्धका जाना और दूसरी ओरसे पापको बढ़ानेवाले काम क्रोध लोभ मोह मद और मात्सर्यका भयानक वेशमें नाचते गाते हुए आना।

सदागाइयेगावेजयमातमाया। कृपाकोरसेजिसकीवलहमने पाया।
हैमायाकीसन्तानहमसबसुखारी। रचेंहमसदाजगमेंजंजालभारी।
सभीजीववशंकितरहेंहमसेनिशदिन। हमारेनचायेनचेंपलघड़ीछिन।
अटलराज्यमायाकेमेंहमहैंराजा। प्रजा सब हमारीकरेंकामकाजा।
हो मायाकी जगमेंसदाजय२। कहोमिलकेभाईसदाजयसदाजय।

काम-यह क्या मातः! आज तुमको खिन्न क्यों देखरहा हूँ! आज ऐसी दशा क्यों है? मैया क्या मेरे प्रभावको भूल गई? मैं काम हूँ अपना अधिक परिचय क्या दूँ तू जानती ही है, सब जीव मेरे खेलनेके खिलोने हैं क्या मेरे काममें कुछ ढिलाईहुई है?

क्रोध-सकल भूतल मेरी मुट्ठीमें है पल भरमें सारी त्रिलोकी को जलाकर खाक करसकता हूँ ऐसा कौन है, जो क्रोध इस नामको सुनकर न डरता हो, भूमिपर ऐसा कौन जीव है जो मुझ से बचा हो? मेरी मूर्त्ति रक्तवर्ण है जहाँ चाहता हूँ तहाँ ही चारों ओर रक्त बहा देता हूँ, मैया! तुझसे कौन बात छिपी है जिसका परिचय दूँ, क्या मुझसे कोई अपराध होगया है?।

लोभ-मेरी लाओ लाओ कभी पूरी होती ही नहीं इस भूतल पर ऐसा कौन है जो मेरे चुङ्गलसे बचा हो? मातः! जगत् भर के जीव मुझसे परम प्रेम करते हैं और मैं भी सदा उनके शिर पर सवार रहता हूँ, और सबके शुभकार्योंमें जैसे बनता है तैसे विघ्न डालता हूँ क्या मेरे किसी काममें गड़बड़ी हुई है?।

मोह–मैया ! मेरा सदा यही काम है कि सबको लाकर तेरे चक्र जालमें फँसाना, जो कोई मेरे वशमें आकर 'मैं-मेरा' यह बोली बोलने लगता है उसीके दोनों लोकोंका नाश करडालता हूँ ! मेरा नाम मोह है फिर मेरे काम भी संसारमें नामके अनुसार ही होते हैं, ऐसा कौन जीव है कि जिसपर मेरी प्रभुता न हो ? मातः ! मेरे किसी कार्यमें असावधानी हुई है क्या ?

मद–'मैं बड़ा हूँ, मैं बड़ा हूँ, मेरासा ऐश्वर्य भूतलपर किसका है ?' बस यही मेरा मूलमंत्र है, इस मंत्रके प्रभावसे कौनसा जीव उन्मत्त नहीं है? और ऐसा कौन है जो मेरे वशमें न हो ? नजाने कितने राजा, रानी, पण्डित और सज्जनोंको मैंने इस अहंताके जालमें डालकर ग्रस लिया है। मुझसे बचकर कौन पुरुष रक्षा पासका है ? मातः ! क्या मुझसे कोई अपराध होगया है ?

मात्सर्य–'मैं बड़ा चतुर हूँ, मेरे सामने सब मूर्ख हैं, मेरी युक्तिके सामने कौन ठहर सकता है ?' बस यही मेरा तीखा अस्त्र है, बस इस अस्त्रके बलसे ही मैं बलवान् और सबोंमें प्रधान हूँ मैया ! ऐसा कौन जीव है जो अपनेको श्रेष्ठ न समझता हो, मनुष्यके शरीरमें मेरे सिवाय दूसरा ऐसा कौन है जोकि पुरुषके मुखसे उसकी प्रशंसा करा देय मैं साहसके साथ दण्ड ठोककर कहता हूँ कि भूतलपर काम आदि किसीकी भी शक्ति नहीं है कि जो मेरी गति रोकदेय, मेरा तेज बड़े भारी तेजस्वीको भी हीनकान्ति करसकता है, मातः ! मैं जोरके साथ कहता हूँ कि सबमें मुख्य मैं ही हूँ सब जीव मेरे वशमें हैं, फिर मेरे होते हुए तू शोकसे व्याकुल क्यों होरही है ? स्पष्ट कहो मुझसे कोई अपराध तो नहीं हुआ है ?

सब बोले-मातः ! दुःखका कारण बताओ, हमसे तुम्हारी यह दशा देखी नहीं जाती है।

माया-नहीं सुपुत्रों ! तुम्हारा कुछ अपराध नहीं है, इस समय मैं आत्मस्वरूपमें मग्न थी और कोई बात नहीं है।

(अचानक स्वर्गीय प्रकाश होना)

काम-यह क्या ! एकायकी मेरा मन भयभीत क्यों होउठा ?

सब-(आश्चर्यमें होकर) यह प्रकाश कहाँसे आया ? हम सबोंके मन क्यों घबड़ागये ?

(सबका भय मानकर चिल्लाना और काँपना)

रक्षा करो मैया ! बचाओ ! नहीं तो प्राणचले ।

माया-कुछ भय न मानो बेटा ! धीरज धरो।

थोड़ी ही दूरपर पुण्यका प्रचार करनेवाले विवेकक्षमा सन्तोष श्रद्धा दया और शान्तिका प्रवेश अचानक परदेका पलट जाना मायारचित स्वर्ग और मायाकी प्रकाशमयी मूर्ति कुछ सावधान होकर पापप्रवर्त्तक काम क्रोधादिका अत्यन्त आश्चर्यके साथ भयभीत भावसे आपसमें एकका दूसरेके ओरको देखना ।

माया-(आगेको बढकर) आओ मेरे प्राण प्यारों आओ ! अब मेरी इच्छा पूरी हुई ।

विवेक-मातः हम सब साथी मिलकर तुम्हारी सेवा करनेको आये हैं,तुम जिसके ऊपर प्रसन्न होजाती हो उसको फिर जगत्में किसी वस्तुकी कमी नहीं रहती है, मैया ! इस समय हम एक भिक्षा माँगने आये हैं ।

माया ! सुपुत्रों ! तुमको किस वस्तुकी कमी है ? क्या चाहिये?

विवेक-मातः तुम्हारी करुणाके विना क्या होसकता है ? हे चैतन्यरूपिणी ! शिवे ! शुभंकरि ! जीवोंकी ओरको मुख उठा कर देखो, मैया ! तुम्हारे विना शंकर क्या करसकते हैं ?

माया-जीवोंका उद्धार करनेको श्रीशंकरने अवतार धारा है यह बड़े आनन्दकी बात है उसमें मेरी क्या आवश्यकता है ?

क्षमा-क्षमामयी शुभकारिणी ! तुम माताके विना जीवोंके ऊपर क्षमा कौन करेगा ।

संतोष-मातः ! आनन्दरूपिणी ! तू सदा आनन्दमयी है तेरे सिवाय संतोष देनेवाला दूसरा कौन है ?

श्रद्धा-चैतन्यरूपिणी मैया श्रद्धामयी ! श्रेष्ठ श्रद्धाके बिना जीव कैसे रक्षा पासकते हैं ?

दया-दयावती कल्याणदायिनी मैया ! दयाके बिना जगत् का व्यवहार कैसे चलसकता है ?

शान्ति-मातः ! ब्रह्माण्डमें शान्तिमयी शक्ति तू ही है, तेरे बिना शांतिरूप अमृतकी वर्षा कौन करसकता है।

विवेक-(कातर होकर हाथ जोड़े हुए) हे कात्यायनि ! हे ब्रह्मसनातनि ! जीवोंको ज्ञानका दान देकर शीघ्र ही रक्षा करो तुम्हें छोड़कर और कोई रक्षक नहीं है।

माया-मैं पहिलेसे ही सब जान बूझ चुकी हूँ हे पापप्रवर्त्तक काम क्रोधादिकों ! और हे पुण्यप्रवर्त्तक विवेक क्षमादिकों ! आओ सब मिलकर एक एक करके मेरे हृदयमें लीन होजाओ, आज मैं तुमको एक गुप्त बात बताती हूँ, तुम दोनों कुछ भिन्न नहीं हो, परन्तु संसारी पुरुष इस बातको नहीं जानते हैं, इस कारण ही काम क्रोधादिका अनादर और विवेक क्षमा आदि का आदर करते हैं, जो महात्मा पुरुष होते हैं वह कहीं भी भेद भाव नहीं रखते हैं, परन्तु क्षुद्र पुरुषोंको इस बातमें सन्तोष नहीं होता है, वह अपने स्वभावके अनुसार सबको भेदभावसे देखते हैं परन्तु वास्तवमें भूमण्डलपर पाप पुण्य कोई भिन्न वस्तु नहीं है क्योंकि रचनाके क्रमसे एकमेंसे ही दो प्रकट होजाते हैं और उन दोमें वह एक ही व्याप्त रहता है, परन्तु भ्रममें पड़ा हुआ जीव इस बातको नहीं समझता है इस कारण ही झंझट करता है, जो पुरुष तुम दोनोंमें भेदभाव समझता है उससे कभी सुविचारकी आशा ही नहीं, जो महात्मा पुरुष हैं वह पाप और पुण्य

को एक दृष्टिसे देखते हैं उनके लिये यह संसारही स्वर्ग होजाता है परन्तु ज्यों ही उनके मनमें भेदभाव आता है त्यों ही अशांति और डाह आकर उनके मन पर अधिकार जमा लेते हैं पाप पुण्यमें भेदभाव रखना ही मनमें विकार उत्पन्न करदेता है, वह मनोविकार ही पुरुषके लिये नरक समान दुःखका भण्डार हैं हे मेरे प्रिय पुत्रों ! इसके सिवाय और कुछ नहीं है; यह सब बुद्धिका खेल है, तुम सब एक हो इसकारण सब मिलकर आओ और मेरे हृदयमें स्थान पाओ, मैं तुम सबोंका एक समान आदर करूँगी तुम सब अपने २ कर्तव्यका पालन करो।

(अचानक घोर अन्धकारका होना)

(गम्भीर स्वरसे) ॐ! यहसब वही चमत्कार है! जब सारा ब्रह्मांड अन्धकारमें था सब जगत्की सामग्री भेदाभेद हीन एकाकार थी आदिमें चराचर कोई नहीं था,न पृथ्वी थी,न चन्द्रमा, सूर्य और तारागणोंकी अनन्त रचना थी जीवोंकी धर्माधर्म प्रवृत्तियें भी नहीं थीं,था एक अनन्तरूपसे व्याप्त घोर अंधकार, उस समय एकायकी दिव्य प्रकाश आया और उसने अंधकार को दूर करदिया था मैं वही तो हूँ इस समयको भी तो मैंही हूँ

[इतने हीमें परम प्रकाशका होना,आकाश मार्ग, अत्यन्त नीला स्थान, एक साथ प्रकृति और पुरुष (शिव पार्वती) की मूर्तिका प्रकट होना]

मैं वही तो हूँ कहाँ है मेरी नगरी ? और कहां हैं पापवृत्तियें तथा विवेक आदि पुण्य वृत्तियें ? क्या बात है जो कहीं कुछ भी नहीं दीखता है ? यह क्या यह तो सब एकाकार होरहे हैं?

(अचानक अन्तर्धान होना)

(आकाशमें अदृश्यरूपसे देवताओंका स्तुति गाते हुए फूल बरसाना)

जय रूप गुण बर्जित निरंजन, नित्य आनन्द मय जय।
जय आदि अन्त विहीन शंकर शुद्ध ज्योतिर्मय जय !

—०—

❀ द्वितीय दृश्य ❀

(सुबुद्ध और सुलोचनदो विद्यार्थियोंका प्रवेश)

सुलोचन-क्यों मित्र सुबुद्ध ! आज क्या बात है जो ऐसे घबड़ाये हुएसे जारहेहो ?

सुबुद्ध-वाः ! क्या तुमने नहीं सुना ? हमारे गुरुजीके पुत्र हुआ है, बारह दिन हुए नामकर्ण संस्कार भी होगया आज इष्ट मित्रोंकी जीमनवार होगी, उसीके सामानकी ठीक ठाकमें लग रहा हूँ।

सुलोचन-(आश्चर्यमें होकर) हाँ ! क्या यह बात सत्य है ? वाः यह तो बहुत अच्छा समाचार सुनाया, बिचारी विशिष्टा पति सहित बहुत दिनोंसे पुत्रकी आशा लगाए हुए शिवजीकी आराधना कर रही थी, ईश्वरने शीघ्र उसकी सुनली।

सुबुद्ध-अरे भाई ! आराधना क्या ! अन्तमें हमारे गुरुजी और गुरुमाताजी दोनों शिवालयमें रहने लगे और निराहार रहकर उन्होंने तहाँ बड़ा उग्र तप किया था तब शिवजीने प्रसन्न होकर कहा कि 'कुछ चिंता न करो, मैं ही तुम्हारे यहां पुत्ररूप से अवतार धारण करूँगा।

सुलोचन-वाः ! फिर यह क्यों नहीं कहते कि इन ब्राह्मण कुलशिरोमणिके यहां साक्षात् कैलासनाथने ही अवतार धारा है तो क्या उस बालकमें कुछ अलौकिक चिन्ह भी है

सुबुद्ध-भाई ! बूझने क्या हो, उस बालकको देखतेमें आंखे चौंधाने लगती हैं, उसके जन्मसमयमें पाँच ग्रह ग्यारवें स्थानमें थे उत्पन्न होतेहुए जब गुरुजीने जातकर्मसंस्कार किया उस समय बड़े बड़े ज्योतिषी आये थे उन्होंने जो उस बालकका जातक सुनाया उसने कहा था कि-"यह बालक अवतारी पुरुष है, तथा चारों वर्णोंके धर्मकी स्थापना करके यह जगत् भरमें प्रधा-

नता पावेगा और उपनिषदादि वेदान्त वाक्योंकी उत्तम व्याख्या करता हुआ दिग्विजय करेगा ?

सुलोचन–अच्छा यह तो बताओ कि उस अवतारी पुरुषका जन्म किस दिन हुआ था ?

सुबुद्ध–भाई ! जब मैंने यहकहदिया कि आज नामकर्णको बारह दिन होगये तब भी क्या तुमको जन्म दिनका पता नहीं लगा, अच्छा तो उस पुण्यपुरुषके जन्मके विषयमें एक कविने एक श्लोक बनाया है मैं तुमको वही सुनाता हूँ सुनो

प्रासूत तिष्यशरदामतियातवत्यामेकादशाधिकशतोनचतुःसहस्र्याम् । सम्वत्सरे विभवनाम्नि शुभे मुहूर्ते राधे सिते शिवगुरोर्गृहिणी दशम्याम् ॥

अर्थात् कलिके ३८८९ वर्ष बीतनेपर विभव नामक सम्वत्सर में वैशाख शुक्ला १०के दिन मध्यान्हकालके समय शुभमुहूर्तमें शिवगुरुकी स्त्री विशिष्टाने शंकर नामक पुत्रको उत्पन्न किया ।

सुलोचन–भाई ! इस समय तो तुमने मुझको आनन्दके समुद्रमें मग्न करदिया प्रतीत होता है अब आगेको आनंददायक समाचार ही सुनने में आवेंगे, परसों वेदविरोधी जैनोंके पराजय का समाचार सुना था और आज तुमने यह शुभसाचार सुनाया

सुबुद्ध–हाँ ! प्रतीत तो ऐसाही होता है कि अब परमेश्वरकी ब्राह्मणोंपर सुदृष्टि फिरी है (पीछेको देखकर) अरे मुझे बातों में कुछ ध्यान ही नहीं रहा अब मुझें जानेकी आज्ञा दो, क्योंकि वह देखो पण्डित लोग इकट्ठे हो होकर गुरुजीके यहां भोजन पानेको जारहे हैं मुझको बड़ा विलम्ब होगया है गुरुजी मेरे आनेकी बाट देखरहे होंगे, क्योंकि जबतक मैं यह पत्तले लेकर न पहुँचूँगा तबतक भोजनका प्रारम्भ नहीं होसक्ता ।

सुलोचन हाँ हाँ ! ठीक है शीघ्र जाओ; मैं भी जाता हूँ अच्छा नमोनमः । (ऐसा कहकर दोनों जाते हैं)

❀ तृतीय दृश्य बगीचा ❀

(कईएक बालकोंके साथ बालकरूप शंकराचार्यका प्रवेश)

शंकर-देखो भाई ! कैसे सुन्दर फूल खिलरहे हैं, मानो सारे बगीचेमें चांदनी छिटक रही है ।

एक बालक-आओ भाई ! इन फूलोंको तोड़कर माला गूँथें।

शंकर-नहीं भाई ! ऐसा करना ठीक नहीं है, क्या हममें ही जीव है इन फूलोंमें नहीं है, जब किसीके नूचने पर हमारे शरीरमें कष्ट होता है तो क्या तोड़ २ कर बींधनेपर उनको कष्ट नहीं होगा ?

१ बालक-भाई ! तुम्हारी सभी बातें संसारसे निराली हैं, हम मनुष्य हैं और वह पेड़के फूल हैं कहाँ हम और कहाँ वह ? उनकी लकड़ी पत्तोंमें क्या हाड़ मांस और प्राण हैं ? तुम तो भाई बड़े वहमी होगये हो !

शंकर-नहीं मुझको वहम नहीं है, हमारे यहां दो साधु भिक्षा करनेको आये थे, पिताजीसे उनका वार्त्तालाप होते समय मैंने उन महात्माओंके मुखसे सुना था कि सब चैतन्यवान् हैं, चैतन्य सबमें एक रूपसे व्याप रहा है, तो भाई ! यह फूल क्या सबसे अलग हैं ? भाई एक बात और है उसको सुन कर तो तुम्हें हँसी आवेगी जैसे बात चीत करते हैं तैसे ही फूल फल और पेड़ पत्ते भी करते हैं परन्तु हम उसको नहीं सुन सकते हैं, क्योंकि हममें उसको सुननेकी शक्ति नहीं है ।

२ बालक-भाई ! तुम्हारी तो सभी बातें संसारसे निराली हैं। कुछ भी हो तोड़ो या न तोड़ो, हम तो यहाँसे फूल तोड़कर माला बनावेंगे ।

शंकर-भाई ! विचारो तो सही माला गूथनेसे हो क्या फल होगा?दो चार घड़ीमें ही वह कुम्हलाकर नष्ट होजायगी,तब तुम

उसको उठाकर फेंकदोगे, परन्तु यदि यह फूल पौधोंपर लगे रहेंगे तो पवनमें कैसी सुगन्ध आवेगी और बगीचेमें कैसी शोभा रहेगी ? कितनीही मधुमक्खियें इन फूलोंका मद लेकर जीवन धारण करेंगी ? जो इतने काममें आवेंगे ऐसे, फूलोंको केवल अपनी क्रीड़ाके लिये नष्ट करडालना क्या हमको उचित है ?

३ बालक-ओ भाई ! देखो वह सरोवरके किनारे पर बगला कैसा आँखें मीचे बैठा है, आओ हम सब मिलकर इसके ढेले मारें यदि इसको पकड लेंगे तो छोटे भैयाके खेलके लिये ले चलेंगे (ढेला मारनेका उद्योग करते हैं) ।

शंकर-नहीं नहीं भाई ! यह क्या करते हो ? यदि तुमको ऐसा ही ऊधम मचाना है तो लो मैं तो घरको जाता हूँ। हाय ! हाय ! कैसा सुन्दर पक्षी है भला इसने तुम्हारी क्या हानि करी है जो इसको मारना चाहते हो,यदि कोई तुमको भी इसी प्रकार निरपराध सतावे तो कैसा कष्ट होगा, जरा विचारो तो सही ?, भाई जिस ईश्वरने हमको रचा है उसीने इस पक्षीको भी उत्पन्न किया है,फिर तुम इसको वृथा कष्ट क्यों देते हो ? ।

२ बालक-भाई ! तुम तो बड़े डरपोक हो ।

शंकर-तुम मेरे लिये परमेश्वरसे प्रार्थना करो कि मैं सदा ऐसा ही डरपोक बना रहूँ ।

१ बालक-भाई शंकर ! परमेश्वर कौन हैं ?

शंकर-यह सारी पृथ्वी जिनकी है, जिन्होंने संसारके सब पदार्थोंको रचा है, जिन्होंने हमको भी मनुष्यका जन्म दिया है जो हरसमय हमारी रक्षा करते हैं और परमदयालु अपक्षपाती और पाप पुण्यके विचारकर्त्ता हैं वह अनन्तदेव ही परमेश्वर हैं

३ बालक-अच्छा भाई शंकर ! यह तो बताओ, तुम बीच बीचमें नेत्र मूँदकर क्या विचारते हो ?

शंकर–भाई! विचारता यह हूँ कि "मैं कौन हूँ, यहाँ कहाँ से किस लिये आया हूँ अब आगेको कहाँ जाऊँगा, और इस संसारमें मुझको करना क्या चाहिये ?" इनही सब बातोंका तत्त्व जाननेकी बड़ी उत्कंठा रहती है।

१ बालक–चलो भाई अब सब घरको चलें सायंकाल होगया।

२ बालक–हाँ भाई! अब घरको चलना चाहिये, नहीं तो पिताजी चिल्लावेंगे।

३ बालक–चलो शीघ्र चलो, और मार्गमें जरा वह परसों वाला भजन भी अलापते चलो।

(आगे २ शंकराचार्य और पीछे सब बालक भजन गाते जाते हैं)

रहोगे मन! कब लों माया माहिं ॥ टेक ॥
आँख खोलि देखहु मन नीके, कोई काहूको है नाहिं।
मानत जिनहिं आपनो यह सब, स्वारथहित लपटाहिं ॥ १ ॥
मात पिता भ्राता सुत दारा, झूठे स्वजन लखाहिं।
समय पड़े कोई काम न आवे, पाप पुण्य सँग जाहिं ॥ २ ॥
जो प्रभु विपत हरत निज जनकी, करुणासिंधु कहाहिं।
सुघर तिनहि कर नेह तिनहिंसों, सब दुख द्वन्द्व सिराहिं ॥ ३ ॥
रामस्वरूप निरखि निज हियमें संशय सकल मिटहिं।
खुलै गाँठ हियकी ताही छिन, कर्महु सकल बिलाहिं ॥ ४ ॥

❀ चतुर्थ–दृश्य ❀

(एक ओरसे बड़बड़ातेहुए विदूषक और दूसरे ओरसे सूत्रधारका आना)

सूत्रधार–(आगेको देखकर) कहो मित्र विदूषकजी! अभी तुम जीते हो?

विदूषक–मैं तुम्हारीमें आँखोंमें क्यों खटकता हूँ? मेरे मरने का डौल तो होही गया था परन्तु शीघ्र ही सावधान होजानेसे बचगया।

सूत्रधार-भला मैं अभी किसी सरकारी सिपाहीसे कहदूँ कि यह वेद निंदक नास्तिक जैन है तो वह अभी तुझको भी तेरे ढपोलशंख गुरुके पास पहुँचादेगा ? ।

विदूषक-(आँख भौं चढाकर) अबे मुह सम्हालकर बोल! किसको जैन कहता है ? क्या तेरी आँखोंपर पट्टी बँधी है, मेरे गलेमें पड़ा हुआ यह लंगर नहीं दीखता है ? (ऐसा कहकर गलेमेंका जनेऊ दिखाता है ।)

सूत्रधार-(हँसकर) देखलिया २, तू तो वर्णसंकरोंका भी बाबा बनगया, रोज २ गिरगटकी समान रंग बदलता है, अरे! पहिले तो ब्राह्मण था फिर मिष्टान्नके लोभसे जैनी होगया और अब मरनेकी पारी आई तो ब्राह्मण बन गया ? शाबास भाई शाबाश ! (ऐसा कहकर कमर ठोकता है)

विदूषक-अरे भाई ! परमेश्वरके लिये ऐसी बातें न करो तुम जानो या मैं जानूँ, और हाथ धोकर मेरे प्राणोंके पीछे ही पड़े हो तो और बात है ।

सूत्रधार-अच्छा यह तो बताओ,इस महासंकटसे तू बचा कैसे ?

विदूषक-उस दिन तो मैं तुमको मिला ही था, फिर दूसरे दिन मैं ग्रामके देवालयमें अजगरकी समान अचेतसा पड़ा रहा, इतने हीमें दश पाँच सिपाहियोंके साथ लिये जमादार आया, और उसने एकायकी सिपाहियोंसे हमारे गुरुजीको बचे बचाये शिष्यों सहित मुश्कें बँधवाकर बाहर निकलवाया तब मैं घबड़ाकर हाथमेंका मोरछल तहाँ ही फेंक और गलेमें जनेऊ डालकर राम राम कहता हुआ बैठ गया ।

सूत्रधार-हाँ ! की तो बड़ी चतुराई, अच्छा फिर ?

विदूषक-फिर सिपाहियोंने उनको धकियाकर बाहर निकाला और राजाकी आज्ञा सुनाकर एक एकके दो दो करही तो डाले

यह देखकर तो मेरे देवता कूँच करगये, ईश्वरने बड़ी कृपा की भाई, सिपाही मेरे ऊपर कुछ सन्देह न करके ज्यों ही तहाँसे टरके कि मैं चम्पत हुआ तबसे इसी मोहल्लेमें आनन्दसे गुजरती है, परन्तु यार कहीं किसीसे कह न देना !।

सूत्रधार-देख तू मौतके मुखसे बचा है, परन्तु अब भी निश्चय हुआ या नहीं ? अब तो "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" 'मरण श्रेष्ठ निज धर्ममें' इस भगवद् वाक्य पर विश्वास रखकर धर्माचरण कर।

विदूषक-हाँ भाई! टकर लगकर ही अक्कल आती है! अब चाहे जोकुछ हो, सनातन वैदिक धर्मको कभी नहीं छोड़ूगा, परन्तु हाँ एक बात भूल ही गया! मैं आज कल बड़े चैनमें हूँ मेरा विवाह भी होगया ?

सूत्रधार-अरे क्या ठीक कहरहा है ? कहाँ दाव लगा ?

विदूषक-ठीक क्या बहुत ठीक कहरहा हूँ दाँव लगनेकी आप क्या बूझते हैं, इस फक्कड़की अकल क्या ऐसी वैसी समझी है? माहिष्मती नगरीमें एक मण्डनमिश्र नाम वाले पंडित हैं, वह संन्यासको बड़ा बुरा समझते हैं यह तो तुमने सुना ही होगा, अब उन्होंने अपना यह नियम कर रक्खा है कि जिस किसी संन्यासीको देखते हैं उसीको शास्त्रार्थमें जीतकर विवाह करा देते हैं मैं भी यह बात सुनते ही अपना काम साधनेके लिये संन्यासी बनगया और उनके नगरमें गया तहां कितनेही पंडित मेरे पास आकर कहने लगे कि "शास्त्रार्थ कर" परन्तु तुम जानते ही हो हमारे लिये तो काला अक्षर भैंसकी समान है, फिर मैं शास्त्रार्थके लिये गरदन हिलानेको छोड और उत्तरही क्या देसकता था, ? मेरे ना करते ही उन्होंने मुझे जबरदस्ती पकड़कर मेरे गेरुआ कपड़े उतारकर स्वेत वस्त्र पहिराये और

और उसी समय एक तरुणी स्त्रीके साथ मेरा विवाह करदिया कहिये कैसा घर आबाद किया ? वाह रे मैं !

सूत्रधार-भाई ! काम तो तूने बडी चतुराईका किया, अच्छा फिर आज किधरको धावा है ?

विदूषक-ऐसे ही टहलता टहलता चला आया हूँ वह इस मौहल्लेमें एक श्रीमान् प० शिवगुरु रहते हैं ना आपने नहीं सुना क्या ? उनके एक शंकर नामक पुत्र हुआ था सुना है। आज उसका यज्ञोपवीत होनेवाला है, ईश्वरने कृपा की तो तहाँ दो चार दिन कचौडी पूरियें उडावेंगे,फिर मैंने विचारा कि घर एक जनेके लिये क्या चून्हा बलेगा,इसलिये गठजोडेसे जारहा हूँ

सूत्रधार-अरे ! अब तहाँ जाकर क्या करेगा, अभी थोडी देर हुई सब कार्य होचुका, मैं तहाँसे निबटकर ही आरहा हूँ।

विदूषक-(भौचकासा होकर) तो क्या यह मेरा इतना मार्ग नापना बेकार ही गया अच्छा यह तो कहो तहाँ जानेपर दक्षिणा भी मिलेगी या नहीं ?

सूत्रधार- छिः अरे मूर्ख ! कहाँ दक्षिणा लेकर बैठा है ! वह विचारी अपने दुःखसे ही खाली नहीं ?

विदूषक-दुःख कैसा ? क्या हुआ ?

सूत्रधार-अरे! उन शिवगुरु महाराजका देवलोक होगया ना! इस बातको कहते हुए भी कष्ट होता है,देखो कैसे विचारे विद्वान् थे कैसे मिलने वाले थे ! हा ! थोडी ही अवस्थामें, ऐसे श्रेष्ठ पुत्रका कुछ भी सुख न भोगकर चल बसे, हे ईश्वर ! यह तेरा बडा अन्याय है ?

विदूषक-अररर ! यह लो मेरी तो दक्षिणा ही डूबगई हा ! यह बडा वज्र टूटा ?

सूत्रधार-भाडमें जाय तेरी दक्षिणा, ऐसे ही लोभियोंने

ब्राह्मणोंकी निन्दा करा रक्खी है, हां आज शिवगुरु होते तो तुझको मुहमांगी दक्षिणा देते।

विदूषक-तो फिर उनके घरके और तो सब जीते हैं या मेरी दक्षिणाके कारण सभीका परलोक होगया ?

सूत्रधार-अरे कैसा अमङ्गल बोल रहा है? तुझे बात करना भी नहीं आता, घरके सभी लोग हैं और ईश्वर उनकी उमर बढ़ाकर सदा ऐसा ही सुखी रक्खे (परदेकी ओरको देखकर) अरे! वह देख, शिवगुरुकी स्त्री सती विशिष्टा इधरको ही आ रही है, शिव! शिव! इस विचारीके विधवा वेषको देखनेसे मेरे हृदय पर चोटसी लगती है, चल भाई! अब यहाँ खडे होनेसे कष्ट होता है।

(ऐसा कह कर दोनों जाते हैं)

❁ पञ्चम-दृश्य ❁

(विधवा वेषधारी विशिष्टा का प्रवेश)

विशिष्टा-(बडे कष्टसे नीचे बैठकर माथे पर हाथ रक्खे हुए) जगदीश्वर! जैसा तेरे मनमें आता है, तू उसी प्रकार मनुष्यको नचाता है (लंबा साँस लेकर) नरकवाससे भी अधिक कष्ट देने वाले रँडापेका परमदुःख भोगनेको मैं क्यों जीती रही पतिके साथ ही इस संसारसे उठजाना ठीक था, परन्तु क्या करूँ इस बालक शंकरकी रक्षा कौन करेगा इस मायाके जालमें फँस कर वह सुख भी हाथसे गया; अरेरे! मैं इतना भी न समझी कि-ईश्वर किसीके विना किसीकी भी अटकी नहीं रखता है, यदि ऐसा न होता तो उसको, विश्वम्भर या जगदीश नामसे कौन पुकारता ? (कुछ विचार कर) खैर जो कुछ हुआ, अब पछतानेसे भी क्या फल है ? जिसके कारण उस सुख को भी तिलांजलि दी, उसके ऊपर दृष्टि रखकर समयको बिताना ही

अब अच्छा है (चौकन्नी सी होकर) मेरे शंकरमें हर एक गुण अद्भुत है, थोडीसी उमरमें कैसे गम्भीर विचार, कैसी बड़प्पन की बातें ! मानों पहिले जन्मका ही सीखा हुआ जन्मा है, ऐसी कौन बात है-जिसको मेरा शंकर नहीं जानता है ? परसों ही यज्ञोपवीत हुआ है, सर्वथा पुस्तकमें लिखे हुए ब्रह्मचारीके नियमोंको पाल रहा है, न जाने आज भिक्षाके लिये कहाँ चला गया है, दुपहर ढलने लगा, धूपमें पैर तपते होंगे !

(इतनेमें ही परदेके भीतरसे 'भवति भिक्षां देहि मातः' ऐसा शब्दहुआ)

विशिष्टा-(सुनकर) मालूम होता है बच्चू आगया ।

(तदनन्तर ब्रह्मचारीके वेषमें शङ्कराचार्य आते हैं)

शंकर-मैया ! यह भिक्षा कहाँ रक्खूँ ?

विशिष्टा-बेटा ! उधर ही रखदे (शंकराचार्य भिक्षाका पात्र रखते हैं) बेटा ! रोज रोज भिक्षाके निमित्त क्यों जाय है ? घरमें क्या कमी है ?

शंकराचार्य-मैया ! क्या मैं घरमें कमी होनेसे भिक्षा करनेको जाता हूँ ? मातः ! ब्रह्मचारियोंका धर्म ही यह है कि-भिक्षाके अन्नका भोजन करके गुरुके घर वेद पढ़े, दिनमें सोवे नहीं, सवारी पर चढे नहीं, ताम्बूल न खाय, ऐसी शास्त्रकी आज्ञा होनेसे ही मैं उसके अनुसार वर्त्ताव करता हूँ ।

विशिष्टा-(गोदीमें लेकर) बेटा ! इतनी बातें किसने सिखाई हैं ? (लंबा साँस लेकर) ईश्वर ! ऐसे सद्गुणी पुत्रका सुख भोगे बिना ही उनको क्यों बुला लिया ? (नेत्रोंमेंके आँसू पोंछ कर) बेटा ! अब मेरी यह इच्छा है कि-समयानुसार तेरा विवाह होकर तेरे दो चार संतान होजायँ तो मेरे सब मनोरथ पूरे होजायँ

शंकराचार्य-मैया ! क्या मेरा विवाह करनेको कह रही है ? छिः छिः यह झगड़ा तो मैं कभी भी नहीं पालूँगा, मातः !

इसमें क्या रक्खा है, संसारके सब पदार्थ मिथ्या हैं, फिर सांसारिक भोगकी साधन स्त्रीसे भी सुखकी क्या आशा ?

विशिष्टा अच्छा तो फिर त क्या करेगा ? सदा हाथसे ही ठेके खायगा ?

शंकराचार्य–मातः ! मेरी संन्यास लेनेकी इच्छा है, बस तेरे आज्ञा देनेकी ही देर है।

विशिष्टा–अरे ! क्या यही तेरा चतुरपन है ! मैं जो तुझको बड़ा सुजान समझ रही हूँ क्या उसका यही फल है ? अरे ! तुझको यह दुर्बुद्धि किसने सिखाई है ? बेटा ! इतनी ही अव-स्थामें संन्यास लेकर क्या इस सब घर बारको मट्टी करेगा ? (लंबा सांस लेकर) अरे ! इस कुलका सहारा भी तो अकेला तूही है !, यदि फिर आगेको मुखसे ऐसे अक्षर निकाले तो मैं कहीं जाकर अपने प्राण खोदूँगी, तब मेरे जाने चाहे जो कुछ करता रहियो।

शंकराचार्य–(मनमें) यह अज्ञानरूप अन्धेरेमें पड़ी है, संन्यास लेनेकी आज्ञा कभी भी नहीं देगी, इसलिये अब दूसरे प्रकारसे काम साधना चाहिए कुछ सोचकर (प्रकट रूपसे) नहीं मातः ! मैं तो हँसीमें कह रहा था, देखता था कि-तू क्या उत्तर देगी।

विशिष्टा (फिर गोदीमें बैठाकर) नहीं बेटा ! ऐसी बातें नहीं करते हैं, देख सब संसारी सुखको ही चाह रहे हैं, विवाह के अनन्तर तेरे दो बालक होजायँ तो मेरी आंखें मिचे पीछे बुढ़ापेमें चाहे जो कुछ करना।

शंकराचार्य–जाने दे मातः ! अब उस बातको बढानेका ही कौन प्रयोजन है ? जिस मार्गको जाना ही नहीं उसके कोस क्या गिनना ! अब मेरे मध्यान्ह स्नानका समय होगया और

तिस पर भी आज एकादशी है, इसकारण मैं स्नान करनेको नदी पर ही जाता हूँ ।

विशिष्टा–नहीं बेटा ! घरमें ही शीघ्रतासे स्नान करके भोजन पा ले, नदी स्नान तो रोज होता ही रहता है ।

शंकराचार्य–अरी ! देर नहीं लगेगी, गया और एक गोता लगाकर आया ।

विशिष्टा–अच्छा तो बहुत देर जलमें न रहना, शीघ्र ही आना यदि देर लगाई तो फिर कभी नहीं जाने दूँगी ।

शंकराचार्य–अच्छा; गया और आया (ऐसा कहकर जाते हैं)

विशिष्टा-मेरी डाट कितनी मानता है, मेरे भौं चढाते ही घबड़ा जाता है, न जाने इसको यह संन्यास लेनेके लिये किसने बहका दिया है ? (विचारकर) हां समभ गई, जिस पाठशालामें पढने जाता है, यह सब तहाँका ही प्रसाद है, मैं अब उस पाठशालामें ही जाना बन्द कर दूँगी, बस मैं इतनी ही विद्यासे भर पाई, अब मैं उसको घरके काम काजमें डालूँगी, जिससे अपने परायेको समझे ।

(इतनेमें ही रोता हुआ सुबुद्ध आता है)

विशिष्टा-(घबडाकर) अरे ! रोता क्यों आया है ? अरे यह क्या दशा होरही है! अरे तेरे कपड़े कैसे भीजे हैं ? क्याहुआ, बतातो सही ?

सुबुद्ध–(काँपता २) च- च- च- च- चाची, मैं और श श- शङ्कर नदीपर स्नान करनेको ग- ग- गये थे, तहाँ स्नान क- क- करतेमें श- श- शङ्करका पैर बड़े भारी ना- ना- नाकेने पकडलिया मैंने उसको छु- छु- छुडानेमें बहुतसे उद्योग क- क- क- करे, प- प- परन्तु उसने नहीं छो- छो- छोडा, तब मैं तत्काल इधरको दौ. दौ दौ दौड़ा आरहा हूँ श श शंकर पानीमें खड़ा रो रो रो रोरहा है, ज ज ज जल्दी चल ।

विशिष्टा-(छातीको मसोसकर) हे ईश्वर! मेरे ऊपर यह कैसा संकट डाला? अब मुझे मेरा पुत्र न जाने देखनेको भी मिलेगा या नहीं? मैंने तो पहिले ही कही थी कि वहाँ डूबने को मत जा, अरे चलतो सही देखूँ कहाँ है, (कमर पकड़के उठ कर) अरे! यह सुनकर तो मेरी कमर ही टूटगई।

(ऐसा कहकर दोनोंदुःखित होतेहुए जाते हैं)

❀ षष्ठ–दृश्य ❀

सुलोचन-(आप ही आप) क्या करूँ, कितने ही दिन हो गए मित्र सुबुद्धका दर्शन ही नहीं हुआ। इसी लिये मैं अपने आपही आज इधर आया हूँ, परन्तु अभीतक उसका कुछ पता ही नहीं न जाने क्या बात है!

(इतने हीमें उदास हुआ सुबुद्ध आता है)

सुलोचन (उसको प्रेमके साथ हृदयसे लगाकर) मित्र! आज तुम ऐसे उदास क्यों होरहे हो, तुम तो सदा प्रसन्न मन रहते थे, आज नई बात क्यों है?

सुबुद्ध–क्या कहूँ मित्र! आज मेरी सब ही आशाएँ स्वप्नसी होगई, सदाके सुखका समूल नाश होगया,

सुलोचन–भाई! यह क्या कहरहा है? सब वृत्तान्त स्पष्टरूप से सुना तो सही, क्योंकि अपना दुःख मित्रको सुनानेपर कुछ कम ही होता है।

सुबुद्ध–गुरुजीके परलोक वासी होनेका समाचार तो तुम सुन ही चुके होओगे?

सुलोचन–हाँ हाँ भाई! सूर्यका अस्त होना किसको मालूम न होगा।

सुबुद्ध-आज उनका पुत्र और मेरा मित्र साक्षात् शिवाव तार शंकरभी हमको छोड़कर चला गया (ऐसा कहकर रोता है)

सुलोचन-भाई ! यह क्या कहरहा है ! 'छोडकर चलागया' इस सन्देह भरी बातको सुन कर तो मेरी छाती फटी जाती है कैसे २ हुआ, सब बात स्पष्टरूपसे सुना ।

सुबुद्ध-क्या कहूँ ! वह भगवान् जगदाधार हमें मिलेंगे क्या अरे मित्र उनके चित्तमें संन्यास लेनेकी थी इसकारण उन्होंने एकदिन अपनी मातासे संन्यास लेनेकी आज्ञा मांगी थी परन्तु माताने आज्ञा दी नहीं, इसकारण जब आज हम दोनों स्नान को गये थे तब गागाका नाका बनाकर उससे अपनी टाँग पकड़वाली और यह लीला दिखाकर आप रोने लगे ।

सुलोचन-फिर क्या हुआ ?

सुबुद्ध फिर मैंने दौड़ते हुए जाकर सब वृत्तांत गुरु माताजी सुनाया, वह तत्काल ही रोतीं हुई तहाँ पहुँचीं और अपने पुत्र को गहरे जलमें नाकेका पकड़ा हुआ देखकर कुछ वश न रहने से अतिविलाप करने लगीं ।

सुलोचन-अच्छा अब पहिले यह बताओ कि नाकेने शंकर को छोड़ा या नहीं ?

सुबुद्ध-सब बताता हूँ सुनो, फिर माताको देखकर शंकर जलमेंसे ही कहने लगा मातः ! अब मेरे प्राण बचना कठिन हैं परन्तु हाँ ! यदि इस समय तू मुझको संन्यास लेनेकी आज्ञा देदेगी तो कदाचित् मेरे संन्यास धारणका संकल्प करते ही पुनर्जन्म होकर बचगया तो बच ही गया,

सुलोचन-वाः अच्छी युक्ति रची, अच्छा फिर ?

सुबुद्ध फिर वह भोली भाली माता 'यदि आज्ञा नहीं देती हूँ तो हाथमें आया हुआ पुत्र रत्न जाता है' ऐसे कठिन चक्रमें पडीहुई कोई उपाय न सूझनेसे पागलसी होकर टकटकी लगाये चारों ओरको देखने लगी ।

सुलोचन—हा ! कैसा कठोर अवसर था, भाई ! उस समय उसके चित्तपर जो बीती होगी, उसका ध्यान करनेसेभी शरीर रोमाञ्च खडे होते हैं ।

सुबुद्ध—तदनन्तर अपनी माताको पुत्र मोहके कारण कुछ उत्तर न देकर मौन हुई देखकर उन भगवान् परमविरक्त ममता शून्य शंकरके नेत्रोंमेंसे भी आंसू बहने लगे, परन्तु उस समय उन्होंने आँसुओंको रोक कर 'माता जो कुछ उत्तर देना हो शीघ्र दे, अब मुझसे नाकेकी पीड़ा नहीं सही जाती, ऐसा कह कर वह मायाको चलाने वाले चीख मारकर रोये ।

सुलोचन—हा ! ममताकी फाँसीको काटना बड़ा कठिन है, अच्छा फिर ?

सुबुद्ध—फिर उसने 'यह मेरा पुत्र संन्यासी होकर ही जीता रहै,ऐसा कहकर हाथमें जल लेकर संन्यासी होनेकी आज्ञा देदी,

सुलोचन—अच्छा फिर नाकेसे छुटकारा कैसे हुआ ?

सुबुद्ध—भाई ! इसके लिये ही तो शंकरने अपने आप यह कपट रचा था माताके आज्ञा देते ही न कहीं नाका था न कुछ! वह उसी समय जलसे बाहर आकर माताके पास खडा होगया

सुलोचन—अच्छा अब मेरा चित्त ठिकाने आया ! हाँ तो उस कष्टसे छूटनेके अनन्तर क्या हुआ ?

सुबुद्ध—फिर माताने 'मैं तो नहीं जाने दूँगी' यह हठकी तब उसको ज्ञानोपदेश करके और मरणके समय तेरे समीप अवश्य आऊँगा ऐसा कहकर तथा घरके सब पदार्थ भाई बन्धुओंको सौंप माताकी व्यवस्था उनसे कहकर संन्यास धारण करनेको चलागया (आँखें भरकर) भाई ! अब मुझे तो किसीका भी आश्रय नहीं रहा ।

सुलोचन-भाई ! तेरी और शंकरकी तो मित्रता थी, फिर

तूने उससे अपने विषयमें बातचीत क्यों नहीं की ?

सुबुद्ध–नहीं जी ऐसा कैसे होसकता था उस समय जब मैं अधीर होकर रोने लगा तो मेरे पास आकर मुझको समझा करकहा कि मैं संन्यास लेकर काशीमें आऊँगा तब तूभी आकर मुझसे मिलना तो तेरा उद्धार करूँगा ।

सुलोचन–तब तो तू काशीको जाने वाला ही होगा ? मैं भी साथ चलनेके लिये अभी आता हूँ ऐसे पुण्य–पुरुषके सहवास की समान दूसरा कौनसा सुख होसकता है ?

सुबुद्ध–भाई ! मैं तो अब दो घड़ी बादही यात्रा करनेवाला हूँ यदि तुझको साथ चलना हो तो शीघ्रही आजा ।

(ऐसा कहकर दोनों जाते हैं)

❀ सप्तम–दृश्य ❀

स्थल हिमालय पर्वत

(तदनन्तर आसनपर बैठहुए पूज्यपाद गोविन्दचार्य स्वामीका प्रवेश)

गोविन्दस्वामी-नारायण नारायण (ऐसा कहकर आप ही आप) कल समाधिके समय जगदीश्वरकी यह आज्ञा हुई थी कि कलको जो शिष्य आवे उसको ही आश्रमका भार सौंप देना परन्तु अभीतक तो यहाँ कोई आया नहीं ।

(इतने हीमें शंकराचार्य आते हैं)

शंकराचार्य–(आप ही आप) मैंने माता की आज्ञा ले घरसे निकलकर अब तक अनेकों वन पहाड़ोंको लांघते २ आज इस हिमालय पर आकर गुरुजीकी गुफाका पता पाया है उस तपस्वीने जो पहिचान बताई थी, वह तो इस गुफा पर दीख रही है, बस वह परमयोगीजी महाराज इसी गुफामें होंगे (ऐसा कहकर और कुछ पग आगे बढकर) धन्य धन्य यही है वह गुही, वह देखो मेरे गुरु योगीजी महाराज बैठे हैं,अच्छा

तो अब चरणोंमें प्रणाम करके अपने जन्मको सफल करूँ।

(ऐसा कहकर समीप आ चरणों पर मस्तक रखते हैं)

गोविन्दस्वामी–नारायण नारायण, अरे बाबा तू कौन है ?

शंकराचार्य–पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पाँचों महाभूतोंसे निराला मैं आत्मा हूँ।

गोविन्दस्वामी–वाः ! यह तो उत्तम अधिकारी मालूम होता है, हे बेटा ! तेरा नाम क्या है ?

शंकरा०–हे सद्गुरो ! इस पञ्चमहाभूतके शरीरका नाम शंकर है।

गोवि०–धन्य शंकर ! बता तेरी क्या इच्छा है ? और इस किशोर अवस्थामें ही यहाँ तपोवनमें क्यों आया है।

शंकर०–महाराज ! मैं संसारके तापोंसे बड़ा पीडित होरहा हूँ, इसकारण संसार दुःखको दूर करनेवाले संन्यास आश्रम को पानेकी इच्छासे श्रीचरणोंका आश्रय लिया है, आशा है श्रीमान् मेरे इस मनोरथको,पूरा करेंगे।

गोवि०–(हँसकर) तू कहता तो सत्य है परन्तु तेरा यह वैराग्य अधिक दिनों तक नहीं ठहर सकेगा,क्योंकि–भोग आदि करके इन्द्रियोंकी तृप्ति हुए बिना यह इन्द्रियें कदापि वशमें नहीं होसकतीं इस कारण अभी तेरी अवस्था संन्यास आश्रम को धारण करनेकी नहीं है।

शंकरा०–इन्द्रजाल विद्याके प्रभावसे होने वाले चमत्कार को देखनेसे बालकोंको मोह होता है, परन्तु यह इन्द्रजाल है ऐसे समझने वाले तरुण पुरुष उसको देखकर मोहित नहीं होते हैं, तैसे ही इन मिथ्या इन्द्रियोंसे सत्य विकार हो ही कैसे सकता है ? इसकारण श्रीमानकी कृपा होयगी तो मैं इन्द्रियोंके मोहमें कदापि नहीं फँसूँगा।

गोवि०–अस्तु तू कौन है; यह मैंने जान लिया, अच्छा अब

मैं तुझको उपदेश देनेके लिये अभी उद्यत हूँ परन्तु तू भागीरथी के घाट पर जा और मुण्डन कराकर शीघ्र ही लौटकर आ।

[तदनन्तर श्रीशङ्कराचार्यजी परदेके भीतर जा फिर लौट कर आते हैं]

शंकरा०–महाराज ! श्रीमान्की आज्ञानुसार मैं मुण्डनके कामसे निवट आया।

गोविं०–अब इन वस्त्रोंको धारण कर (ऐसा कहकर गेरुआ वस्त्र धारण करवाते हैं) दाहिने हाथमें इस दण्डको धारण कर (ऐसा कहकर दंड देते हैं, इसके द्वारा काम क्रोध आदि शत्रुओंका दमन करना चाहिये, अब दाहिना कान इधरको कर क्योंकि–तत्त्वोपदेशक मन्त्रका उपदेश देता हूँ [ऐसा कह कर शंकराचार्यजीके कान में उपदेश करते हैं] अब ऊँचे स्वर से 'नारायण' शब्दका उच्चारण कर।

शंकर०–(ऊँचे स्वरसे) नारायण, नारायण, नारायण।

गोवि०–अब तुझको इस आश्रमके धर्म सुनाता हूँ सुन–एक ग्राममें तीन रातसे अधिक न रहना, रजस्वला स्त्रीका मुख देखने पर उस दिन निराहार व्रत करना, धन इकट्ठा न करना, सवारी पर न बैठना, इसप्रकार धर्मका आचरण करते हुये रात दिन ब्रह्मतत्त्वका विचार करते रहना और जो मुमुक्षु पुरुष हों उनको उपदेश देकर उद्धार करना केवल चौमासेमें चार पक्ष अर्थात् दो महीने तक एक ग्राम में रहना, चौमासे के दिनों में तीर्थयात्राके लिये न जाना।

शंकरा०–आज्ञाके अनुसार ही वर्त्ताव करूँगा, इस शिष्यके ऊपर श्रीगुरु चरणोंकी पूर्ण कृपा रहनी चाहिये।

गोवि० तू मेरा मुख्य शिष्य है, तेरा 'भगवत्पूज्यपादाचार्य' यह इस आश्रमका नाम रखता हूँ, अब तुझसे गुरुपरम्परा कहता हूँ, सुन-प्रथम अद्वैतके मूल आचार्य श्रीव्यास भगवान् थे, उनके शिष्य श्रीशुकदेवजी हुए; उनके श्री गौडपादाचार्य

और उनका मैं तथा मेरा तू [भगवत्पूज्यपादाचार्य] अस्तु,तू साक्षात् शंकर है, मनुष्य शरीरको धारण करने पर उसके अनुसार ही लीला करनी चाहिये, इस कारण तू ऐसी लीला कर रहा है, यह बात मैं स्पष्टरूपसे जानता हूँ।

शंकरा०–आप सर्वज्ञ हैं, ऐसी कौन बात है जिसको आप न जानते हों ?

गोवि०–हे मेरे प्यारे भगवत्पूज्य ! अब तू मुमुक्षुओंका उद्धार करनेके लिये पृथ्वी पर विचर।

शंकरा०–हे सद्गुरो ! मेरी यह इच्छा है कि-इन हाथों से कुछ दिनों गुरुसेवा हो, अभी मुझे आश्रममें ठहरनेकी आज्ञा दीजिए।

गोवि०–बहुत अच्छा, आनन्दित रहो, अब मैं मध्यान्हकाल की सन्ध्या करनेके लिये श्रीभागीरथीके तट पर जाता हूँ।

(ऐसा कहकर गुरु शिष्य दोनों जाते हैं)

❃ अष्टम दृश्य ❃

[भगवान् शंकराचार्य का प्रवेश]

शंकरा०–(आप ही आप) मैं तो गुरु महाराजकी आज्ञा लेकर इस पुण्यक्षेत्र काशीपुरीमें आया हूँ अब इच्छानुसार यहाँ की सत्वगुणी सम्पत्तिको तो देखलूँ, आहा ! यह भागीरथीका जल कैसा स्वच्छ है, (जल पीकर) आहा ! जलमें तो अमृत कैसा स्वाद है, धन्य है इस गंगाजलका पान करने वाले यहाँके निवासियोंको धन्य हैं ! (गोता लगाकर) अच्छा मैं स्नानसे तो निबट ही गया अब भगवान् विश्वनाथजीके दर्शन करनेको जाना चाहिये (ऐसा कहकर चलनेका उद्योग करते हैं)

(तदनन्तर चांडालके वेषमें भगवान् विश्वनाथजीका प्रवेश)

विश्वनाथ–आज मेरा मुख्य कार्य परिव्राजक शंकराचार्य की परीक्षा करना है देखूँ नाशवान् जगत्के भयानक मायाचक्र

में दुर्दमनीय इन्द्रियरूप शत्रुओंको इन्होंने कैसा वशमें करा है ! और इस अनन्त जगत्‌को अब किस दृष्टिसे देखते हैं ! आज देखता हूँ यह जगत् भर घृणापात्र चाण्डालके साथ यह कैसा व्यवहार करते हैं, अच्छा मार्गके बीचोबीचमें खडा होजाऊँ ऐसा ही करते हैं !

शंकरा०-(सामनेको देखकर आप ही आप), छिः छिः मार्गमें चाण्डाल खडा है ! अच्छा आपत्तिमें पड़ा, यहाँ तो मैं गंगास्नान कर पवित्र हो भगवान् विश्वनाथकी पूजा करनेके विचारमें था परन्तु अब क्या करूँ इसने तो मार्ग रोक रक्खा है (ऐसा कहते हुए दो पग आगे बढकर) हर हर ! यह कैसा अमंगल चाण्डाल है, हाथमें मांसका पात्र है, साथमें चार कुत्ते हैं, शरीरकी दुर्गन्ध यहाँ तक आरही है, शिव ! शिव ! इसकी तो छायासे भी बचना चाहिये, (ऐसा कह कर एक ओरको बचकर चलने लगते हैं) ।

(चांडाल वेषधारी विश्वनाथ ऊपरको ही आते हैं और शङ्कराचार्य सटपटाते हैं)

शंकरा०-अरे भाई ! जरा बचकर चल ऊपरको क्यों चढा आता है ? क्या तुझको कुछ भी ज्ञान नहीं है ? जरा बच कर चल क्या मुझको छूही लेगा ?, मुझे देर हुई जाती है, गंगास्नान करके विश्वनाथका पूजन करनेको जारहा हूँ,

चाण्डाल-(कहनेको कुछ न सुनकर धक्का देता हुआ जाता

शंकरा०-(नाक भौं चढाकर) अरे रे ! देखो दुष्टने छूही लिया न ? अब मुझको फिर स्नान करना पड़ेगा, मुझको छूने से तुझको क्या मिला ? हटनेके लिये इतना कहा एकनहीं सुनी।

चाण्डाल-हटनेको किससे कहा था ?

शंकरा०-तुझसे ही कहा था और किससे कहता, यहाँ और कौन है ?

चांडाल-मुझसे कहा था या मेरे शरीरसे ?

शंकरा०-भाई ! तू चांडाल नीच जाति है, अब फिर गंगा-स्नानरूप प्रायश्चित्त करना पडेगा !

चांडाल-(हँसकर) यह तो बता तू है कौन ?

शंकरा०-मैं उस ब्राह्मणजातिका हूँ, जिसको चाण्डालका स्पर्श होने पर स्नान करना चाहिये।

चांडाल-अरे ! तू जातिसे ब्राह्मण है या गुणोंसे ?

शंकरा०-पदार्थ उसके गुण कभी अलग २ होकर ठहर ही नहीं सकते, इस कारण यदि मैं ब्राह्मण हूँ तो उसके गुण भी मुझमें हैं ही अतएव मैं जाति और गुण दोनों हीसे ब्राह्मण हूँ।

चांडाल-तब तो तुझको 'ब्राह्मण' इस पदका अर्थ ज्ञात होना चाहिये।

शंकरा०-हाँ हाँ ! जानता हूँ रूढ माननेपर ब्राह्मण पद एक वेदोक्त अनादि सिद्ध जातिका वाचक है और यौगिक माना-जाय तो ब्राह्मण शब्दका पदार्थ 'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः' अर्थात् जो ब्रह्मको जाने वही ब्राह्मण है, ऐसा होगा।

चांडाल-तू अर्थ जानता है परन्तु उसके अनुसार वर्त्ताव नहीं करता, यदि तुझको ब्राह्मण शब्दके पदार्थका अनुभव होता तो तू अपने मुखसे ऐसी अट्टसट्ट बातें न निकालता !

शंकरा०-मुझको मत छू इस वाक्यमें तुमने क्या अट्टसट्ट देखा ?

चांडाल-अरे ! मूढ ! जो तुझको छूरहा है वह 'मत छू' इस कहनेको समझता नहीं है और जो समझता है उसको छूने और न छूनेसे कुछ सम्बन्ध ही नहीं, तिसी प्रकार 'मुझे मत छू' ऐसा जो कहता है वह छुआही नहीं जाता है और जिस शरीरको स्पर्श होता है उसको स्पर्शके विषयमें भले बुरेका कुछ ज्ञान ही नहीं है, क्योंकि वह जड है; गंगाजलमें गोबर पडनेसे क्या गंगा-

जलका माहात्म्य जाता रहता है ? जो सूर्यकी किरणें स्वच्छ गंगाजलमें पड़ती हैं वही यदि अपवित्र मद्यके भरे हुए पात्रमें पड़ें तो क्या ? सूर्यकी पवित्रता नष्ट होकर किरणोंमें नीचभाव आसकता है ? तैसेही आकाशकी समान व्याप्त जो आत्मा उसकी दृष्टिमें ब्राह्मण और चांडालमें कुछ भेद नहीं है, क्योंकि मेरे प्राणों का प्राण अनन्त ब्रह्मांडव्यापी निर्विकार सच्चिदानन्द जो ब्रह्म था मेरी हृदयरूप गुहामें स्थित आत्मा क्या तुम्हारे पूर्णज्योतिर्मय परमात्मासे भिन्न है ? यदि कहो कि तेरा यह चांडाल शरीर अपवित्र है तो इसका उत्तर यह है कि क्या मेरा यह देह पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश इन पंच महाभूतोंका रचा हुआ नहीं है ?, यह जड़ शरीर पवित्र हो चाहे अपवित्र हो, इसमें आत्मा का क्या जाता आता है ? इस नाशवान् जड शरीरका कर्म भोग रूप कार्य समाप्त होते ही यह अपने मूल कारण पञ्चमहाभूतोंमें जामिलेगा, तब मुझमें और तुममें कुछ भी भेद नहीं रहेगा, इस आत्माका कोई एक स्थान नहीं है, यह तो सर्वव्यापक है, इस सब तत्त्वपर ध्यान देकर जरा विचारो कि मेरे शरीरसे घृणा करके बचना तुमको कहाँतक उचित है, इस कारण हे यतिजी ! देह दृष्टिसे मैं तुम्हारा दास हूँ, जीव दृष्टिसे तुम्हारा अंश हूँ और आत्मदृष्टिसे जो तुम हो वही मैं हूँ । इस कारण बाहर अभेद दृष्टिका डौल बनाकर भीतरसे ऐसे भेद भावका आचरण करनेवालेको ब्राह्मण न कहकर पशु कहना क्या परम उचित नहीं है ।

शंकरा०–(आप ही आप) यह चांडाल नहीं है, क्योंकि चांडाल समान नीचके मुखसे तो ऐसी पवित्र वाणी और सद्विचार निकल ही नहीं सकता अतः यह चांडालके वेशमें कोई दिव्य पुरुष हैं (प्रकाशरूपसे) जीव और ब्रह्म दूध और जल

समान मिलेहुए हैं उनमेंसे हंसकी समान ब्रह्मरूप दूधको अलग करके ग्रहण करनेवाला कि जिसकी ऐसी अभेद बुद्धि होजाय वह चाहे चांडाल हो, चाहे यवन हो तथा जातिसे परम नीच हो तब भी वह मेरा प्रणाम योग्य गुरु है। (ऐसा कहकर चांडालके चरण छूनेको झुकते हैं उसी समय भगवान् विश्वनाथ चांडाल का वेष त्यागकर प्रत्यक्ष मूर्तिसे प्रकट होते हैं और चाण्डाल अन्तर्धान होता है)।

विश्वनाथ-हे मेरे अंश शंकराचार्य! उठो, तुम मेरे अवतार पूर्ण हो या नहीं? यह परीक्षा करनेके निमित्त मैंने यह वेष रख कर तुमको स्पर्श किया था, परन्तु तुमने मुझको पहिचान लिया इस कारण मैं प्रसन्न हूँ।

शंकरा०-(ऊपरको उठ सन्मुख साक्षात् विश्वेश्वरको देख और प्रणाम करके) हे भगवन्! पार्वतीप्राणवल्लभ! चराचर गुरो! मैं आपकी परीक्षामें कैसे पार पासकता हूँ? हिलोरें लेते हुए भयानक समुद्रमें जैसे प्रचण्ड जलकी तरंगें एकके पीछे दूसरी चली आती हैं तैसे ही इस संसार समुद्रमें तुम्हारे वशमें रहने वाली जो माया तिसकी तरङ्गें आती जाती हैं वह बड़े २ तत्त्वज्ञानियोंके छक्के छुटा देती है, फिर मेरी तो बात ही कौन है? जिसके ऊपर आपकी कृपा है केवल उसका ही वह माया कुछ नहीं करसकती है सो हे भगवन्! इस संसार सागरमें रहने वाले जो कामादि क्रूर पशु हैं उनका मथन करनेके लिये मेरे पास आपका कृपा खड्ग होना चाहिये।

विश्वनाथ-हे शंकर! तुम यह क्या कहते हो मेरा तो चित्त ही तुम्हारे वशमें है,फिर उस चित्तमें रहनेवाली कृपा हो इसका तो कहना ही क्या?

शंकरा०-आप जो कुछ कहते हैं यह सब सत्य है, क्योंकि

देहदृष्टिसे मैं आपका दासानुदास हूँ, जीव दृष्टिसे मैं आपका अंश हूँ तथा आत्मदृष्टिसे मैं साक्षात् आपरूप ही हूँ।

विश्वनाथ-धन्य! शंकर! तुम धन्य हो, जैसें व्यासजी साक्षात् नारायण हैं तैसे ही तुम भी मेरे मिय हो! जब २ धर्म की ग्लानि होकर अधर्मकी वृद्धि होती है तबरही मैं इसीप्रकार का अवतार धारकर धर्मकी रक्षा करता हूँ। अस्तु, अब तुमको जो कुछ करना चाहिये सो कहता हूँ. सुनो श्रीव्यासजीने सब श्रुतियोंका सार उपनिषदोंके द्वारा वर्णन किया है, उसका मूढ पण्डित अनेकों कुतर्क करके अर्थके स्थानमें अनर्थ कररहे हैं उन सबका जिसमें खण्डन हो ऐसा उपनिषदोंके ऊपर वेदान्तभाष्य बनाओ फिर कर्मकांडको ही सर्वोपरि मानकर उसीमें मग्न रहने वाले मंडनमिश्रको जीतकर दिग्विजय करो और द्वैतवादियोंको जीत ब्रह्माद्वैतमतकी स्थापना करके जगद्गुरुकी पदवी पाओ, अब मैं अन्तर्धान होकर निजधामको जाता हूँ।

शंकरा०-(नमस्कार करके) भगवन्! आप विद्याके भंडार हैं, आप चाहे जिससे चाहे जो कार्य करवासकते हो, मैं आज्ञा नुसार सब कार्य करनेको उद्यत हूँ, परन्तु मेरे रचेहुए भाष्यको देखकर शुद्ध करनेके निमित्त एकबार फिर भी दर्शन होना चाहिये।

विश्वनाथ-तुम्हारा भाष्य पूर्ण होनेपर साक्षात् व्यासजीही तुमको मिलेंगे और वहीं शुद्ध करेंगे, अस्तु, अब मैं जाता हूँ।

(ऐसा कह अन्तर्धान होते हैं)

शंकरा०-आहा! आज साक्षात् भगवान् विश्वनाथका दर्शन हुआ इसकारण मेरा आत्मा प्रसन्न होरहा है, अब उनकी आज्ञानुसार वर्त्ताव करनेमें प्रवृत्त होना चाहिये।

(ऐसा कहकर जाते हैं)

——०——

तृतीय-अंक

प्रथम-दृश्य ।

[कैलास पर्वत पर आसन पर बैठी हुई लक्ष्मी और पार्वतीका प्रवेश]

लक्ष्मी-सखि पार्वती ! परसों मैं तुझसे मिलनेको आई थी तब तूने एक बात चलाई थी, परन्तु वह आधी ही कहकर छोड़ दी थी और बाकी की फिर कहूँगी ऐसा कह दिया था, आज मैं उस बातके ही सुननेको आई हूँ अब मुझे बता फिर आगे को क्या २ हुआ ?

पार्वती-ऐसी कौनसी बात थी ? सखि ! मुझे तो स्मरण रही नहीं ।

लक्ष्मी-अरे ! तेरे स्वामीने मृत्युलोकमें अवतार धारकर बड़े बड़े चमत्कारिक काम करने प्रारम्भ कर दिये हैं उनका समाचार क्या तू मुझे नहीं सुनावेगी? ऐसी रुठाई तो नहीं चाहिये।

पार्वती-(हँसकर) हाँ हाँ ! वह बात परन्तु यह तो बता मैंने तुझको कहाँ तक सुनाई थी !

लक्ष्मी-सखि ! तुम्हारे स्वामीने अपनी मृत्युलोककी माता को धोखा देकर उससे संन्यासके विषयमें आज्ञा ली थी, वह यहाँ तक ही सुनाई थी, अब आगेका वृत्तान्त बता !

पार्वती-अरी ! मुझे भी यहाँ ही तक मालूम थी, फिर आगे को क्या हुआ यह बात अभी तक मैं भी नहीं जान सकी हूँ ।

लक्ष्मी-ऐं ऐं क्या ? तूने कहा था मैं फिर सुनाऊँगी इस कारण मैं तो बडी आशा करके आई थी परन्तु तूने यों ही टरका दिया ना !

पार्वती-थोड़ी देर थम, आगेको क्या क्या हुआ सो सब बता दूँगी, इसीका पता लगानेके लिये मैंने दो गण भेजे हैं वह आते ही होंगे, बस उनके मुखसे सब सुन लेना ।

(तदनन्तर ढुंडी नामक शिवजीका गण आता है)

तुंडी-(समीपमें आकर) माताजी ! दोनोंके चरणकमलों को मैं तुंडी प्रणाम करता हूँ (ऐसा कहकर प्रणाम करता है)

पार्वती और लक्ष्मी -चिरायु हो, सकल कल्याण मिलें ।

पार्वती-अरे तुण्डी ! तू अकेला ही आया और वह भृंगी कहाँ है ?

तुण्डी-माताजी ! आपके कथनानुसार हम दोनों भूलोकमें गये और तात महाराजकी लीला प्रत्यक्ष देखनेके लिये, किसी को न दीखनेवाले अदृश्यरूपसे उनके पीछे ही खड़े रहे, उस समय जो कुछ देखा वह सब निवेदन करनेको ही चला आरहा हूँ और आगेको क्या होता है यह देखनेके लिये भृङ्गीको वहीं ही छोड़ आया हूँ ।

पार्वती-हाँ तो संन्यासके विषयमें मातासे आज्ञा लेकर फिर क्या लीला हुई वह सुना ?

तुण्डी-माताजी ! ध्यान देकर सुनो-संन्यास ग्रहण करनेके लिये माताकी आज्ञा मिलते ही अकेले ही वन और झाड़ियों को लाँघते हुये चले गये, परन्तु कोई गुरु न मिले तब परम-चिन्तामें पड़कर ईश्वरकी स्तुति करते हुये हिमालयकी तलैटीमें जो घना वन है वहाँ निराश होकर बैठ गये ।

पार्वती-क्या पृथ्वी भरमें कोई दीक्षा देनेवाला संन्यासी ही नहीं मिला ।

तुण्डी-जगदम्बे ! सुनो-माहिष्मती नगरीमें एक मण्डनमिश्र नामक कर्मठ हैं उन्होंने ऐसा ऊधम मचा रक्खा है कि-जिस संन्यासीको देखते हैं उसीको शास्त्रार्थमें जीतकर विवाह करा देते हैं, इस भयसे सब संन्यासी छुपे रहते हैं ।

पार्वती -अच्छा तो फिर आगे क्या हुआ ?

तुण्डी-तात महाराज उस वनमें बैठ गये और अनन्यमनसे ईश्वरका ध्यान करने लगे, उसी समय उनको यह शब्द सुनाई

आया कि इस हिमालयकी गुफामें एक महायोगी गोविन्दपूज्य-पादाचार्य नामक स्वामी हैं उनसे संन्यासकी दीक्षा ले।

पार्वती-(हँसकर) सखि लक्ष्मि ! खूब रूप बनाया होगा! अच्छा फिर क्या हुआ ?

तुण्डी-फिर उस गुफाको ढूँढते हुए हिमालय पर गये, तहाँ कितने ही ऋषियोंने उस गुफाकी पहिचान बताई, उसीके अनु-सार गुफाको ढूँढकर गुरु गोविन्द पूज्यसे मिले और संन्यास की दीक्षा ली।

पार्वती-(मुख बिसूर कर) फिर क्या हुआ ?

लक्ष्मि-सखि ! तूने मुख क्यों बिसूरा ?

पार्वती-हाँ लक्ष्मि ! तू हँसी नहीं उड़ावेगी तो कौन उड़ा-वेगा ! (गणसे) फिर क्या हुआ ?

तुण्डी-फिर उसी आश्रममें गुरुसेवा करनेके लिये कितने ही दिनों रहे,सेवा करते समय तात महाराजने बडे २ चमत्कार किये

पार्वती-वह क्या ? शीघ्र सुना

तुण्डी-सुनिये-एक दिन स्वामी गोविन्दपूज्यजी गङ्गाके तट पर समाधि लगाये बैठे थे और गङ्गाजीका गं गं प्रचण्ड शब्द होरहा था, उस शब्दसे गुरुजीकी समाधिमें विघ्न पड़ता समझ कर तात महाराजने सारी गङ्गाको अपने कमण्डलुमें भर कर गंगाका प्रवाह ही बन्द कर दिया ?

पार्वती-जिन्होंने गङ्गाको अपनी जटाओंमें बिन्दुकी समान रोक रक्खा है उनको कमण्डलुमें छिपा लेना कौन कठिन है ? अच्छा फिर ?

तुण्डी-यह बात ज्ञात होते ही गुरुजीने तात महाराजसे कहा कि-गुरुसेवा पूर्ण होगई, अब तुम अवतारका कार्य पूरा करनेको जाओ, इतना कहकर एक कथा सुनाई।

पार्वती-वह कथा कौनसी थी ?

तुण्डी-उन्होंने कहा कि-एक समयमें ब्रह्मसभामें गया था, तहाँ मेरे आदिगुरु व्यासजी भी आए थे, तहां प्रसंगानुसार यह बात चली कि व्याससूत्रों पर भाष्य होना चाहिये, तब 'गोविन्दपादके शिष्योंमेंसे जो गङ्गाप्रवाहको कमण्डलुमें भर लेगा वही मेरे सूत्रों पर ठीक २ भाष्य रचेगा' यह बात व्यासजीने कही थी, इस कारण अब तुम काशीमें जाकर उपनिषदों पर और व्याससूत्रों पर भाष्य रचो, गुरुजीकी यह आज्ञा पाते ही तात महाराज काशीको चले गये ।

पार्वती-काशीमें आकर क्या चरित्र किया, वह भी सुना ?

तुण्डी-काशीपुरीमें आने पर पद्मपाद, आनन्दगिरि आदि को उपदेश देकर शिष्य बनाया और जो कोई संसार रोगसे दुःखित होकर शरण आते हैं उनका उद्धार करनेके लिये तात महाराज आजकल काशीमें ही ठहरे हुए हैं, अब आगेको क्या होता है, उसको जाननेके लिये भृङ्गीको तहाँ छोड़कर मैं श्रीमती के चरणोंमें वृत्तान्त निवेदन करनेको चला आया हूँ (ऐसा कह प्रणाम कर मौन धारे हुए बैठता है)

पार्वती-सखी लक्ष्मि ! सुन लिया, अब आगेका पता भृङ्गी के आने पर लगेगा ।

लक्ष्मी-सखि ! महान् पुरुषोंके चरित्र चाहे जितने सुने चले जाओ तृप्ति नहीं होती है, अच्छा आज तो मैं जाती हूँ, अब कलको फिर आऊँगी ।

पार्वती-अच्छा सखि ! हाँ बातें करने सुनते बहुत समय हो गया, अब कल जैसा होगा देखाजायगा ।

(ऐसा कहकर सब जाते हैं)

❀ द्वितीय दृश्य ❀

स्थल—काशीपुरी

तदनन्तर श्रीशंकराचार्यजीके शिष्य पद्मपाद आनन्दगिरि हस्तामलक और विष्णुगुप्त आदि नारायण २ शब्द करते हुए प्रवेश करते हैं

आनन्दगिरि—भाई ! हम बड़े भाग्यवान् हैं जो ऐसे श्रीगुरु के चरणोंकी शरण पाई है।

पद्मपाद-पातकी नरनारियोंके तारनेको, पापसे दबती हुई भूमिका भार उतारनेको, सत्य सिद्ध वेद वाक्योंका प्रचार करनेको,तथा सबको शुद्ध अद्वैत वादसे दीक्षित करनेके निमित्त साक्षात् भगवान् त्रिशूलधारी शिवने अवतार धारा है, वही गुरु महाराजके रूपमें इस भूतलपर विराजमान है, किन्ही पूर्वजन्मों के पुण्यसे हमको भी ऐसे पुण्यपुरुषके चरणोंकी शरण मिल गई है, आहा कैसे आनन्दका सुअवसर है।

विष्णुगुप्त-मेरा मनतो गुरुमहाराजके उपदेश वचनोंको सुनते हुए किसी शास्त्रके पढ़नेको नहीं चाहता, मानो वेद शास्त्रका सारभूत अमृत ही पिला देते हैं।

हस्तामलक-क्यों पद्मपादाचार्यजी ! जब गुरु महाराज उत्तर मानसरोवरकी यात्रा करनेको गये थे तब तुम तो साथ ही थे; यह तो बताओ तहाँ क्यों २ चमत्कार देखे और श्रीमहाराज कहाँ हैं ?

पद्मपाद-कोई कहनेयोग्य बड़ाभारी चमत्कारतो देखा नहीं,उधर के सब तीर्थोंमें स्नान हुआ, सब देवताओंके दर्शन हुए, जिस जिस क्षेत्रमें गये तहाँ २ श्रीमहाराजने देवताओंका यथाविधि पूजन किया, अनेकों प्रकारकी स्तुति की, सार यह है कि श्रीगुरु महाराजके साथमें यात्राके दिन बड़े आनन्दसे बीते।

आनन्दगिरि—अच्छा अब गुरु महाराज कहाँ हैं ?

पद्मपाद-प्रयागमें "तुम काशीको चलो, दोचार दिन पीछे मैं भी आता हूँ" ऐसा कहकर रहगये हैं, उनकी आज्ञानुसार थोड़ा२ मार्ग चलकर मैं तो यहाँ आपहुँचा हूँ अनुमानतः श्रीगुरु महाराज भी आज ही आते होंगे।

(इतने हीमें परदेके भीतर नारायण शब्दकी ध्वनि होती है)

आनन्दगिरि-भाई! अनुमान होता है कि गुरुमहाराज आगये

तदनन्तर कई एक शिष्यों सहित श्रीशङ्कराचार्यजी आते हैं और नारायण नारायण कहकर आसन पर बठते हैं

पद्म और आनन्दगिरि-(हाथमें दण्ड धारण करेहुए यतियों के सम्प्रदायके अनुसार प्रणाम करके नारायण नारायण शब्द का उच्चारण करते हैं)

शंकराचार्य-(प्रेमके साथ) क्यों सब शिष्यों कुशल तो है ना?

आनन्दगिरि-भगवन्! आपके कृपा-कटाक्षसे सब कुशल हैं, कुछ दिनोंतक श्रीचरणोंका दर्शन नहीं हुआ इस कारणही कुछ एक अधैर्यसा होरहा था, अब श्रीचरणोंका दर्शन होनेसे वह अधैर्य भी दूर होगया।

शङ्कराचार्य-हे श्रेष्ठ शिष्यों! सूर्यास्त होनेको है इस कारण अब मैं गंगास्नान करताहुआ भगवान् विश्वनाथके दर्शन करने को जाऊँगा, तुम सब भी जाकर अपनी अपनी नित्यक्रियासे निबटो,

(नारायण २ कहते हुए सब जाते हैं)

❀ तृतीय-दृश्य ❀

काशी मणिकर्णिका घाट

(चारों ओर शिष्य मण्डली और मध्यभागमें आसनपर विराजमान श्रीशंकराचार्यका प्रवेश)

शंकराचार्य-शिष्यों! पुण्यक्षेत्र काशीपुरीमें आये बहुतदिन होगये, इस कारण मेरी इच्छा है कि और २ देशोंमें भ्रमण

करूँ बहुत स्थानोंमें गये बिना संसारकी दशाका पता नहीं लगसकता ।

शिष्य-हम सब श्रीमहाराजकी आज्ञाको स्वीकार करते हैं

शंकराचार्य-तुम सब मेरे शारीरक भाष्यको तो भलीप्रकार समझते ही हो ?

पद्मपाद-जब श्रीमान्के चरणोंका आश्रय लिया है और श्रीमान्की हम सबोंके ऊपर कृपा है तो फिर शास्त्रीय किसी विषयमें भी अज्ञता रहना कैसे सम्भव होसकता है ?

शंकराचार्य-(सामनेको देखकर) यह बूढा ब्राह्मण कौन आरहा है ।

(बूढे ब्राह्मणके वेशमें वेदव्यासजीका प्रवेश)

वेदव्यास महाराज ! आप कौन हो और किस शास्त्रका विचार कररहे हो ?

आनन्दगिरि-हे द्विजवर्य ! यह अद्वैतवादके आचार्य हम सबोंके गुरु हैं, इन्होंने वेदान्तसूत्रों पर भाष्य रचा है, जिसमें द्वैतवादका पूर्ण विचार किया गया है, हम सब उसी तत्त्वज्ञानको सीखते हैं ।

वेदव्यास-(शंकराचार्यसे) क्यों भैया ! यह तेरे शिष्य क्या कह रहे हैं, यह कहीं पागल तो नहीं होगये हैं ? यह तुझको भाष्यकार कहरहे हैं, परन्तु वेदान्तसूत्रों पर भाष्य रचना तो बड़ा कठिन काम है ? भाष्य तो एक ओर रहा तू यथार्थ रूपसे वेदव्यासजीके एक सूत्रकाभी व्याख्यान कर देगा तो मैं अनेकों धन्यवाद दूँगा ।

शंकराचार्य-विप्रवर! ब्रह्मज्ञानी आचार्योंके चरण कमलोंको मैं सैंकड़ों बार प्रणाम करता हूँ, और उन सबोंके चरणोंकी धूलि अपने शिरपर लेता हूँ,हे ब्रह्मन् ! यदि आप बूझना चाहेंगे तो मैं

अवश्य ही इस बातको दिखाऊँगा कि व्याससूत्रोंके ऊपर मेरा कैसा अधिकार है !

वेदव्यास-अच्छा कहो तो सही "तदनन्तरप्रतिपत्तौ रंहति-सम्परिष्वक्तः।" इसका क्या तात्पर्य है ?

शंकराचार्य-(अपने मनमें) यह ब्राह्मण कौन है ? इसने इतना सूक्ष्म गूढ प्रश्न क्यों किया है ? पहिले तो इस सूत्रके पूर्व पक्षमें ही सैंकड़ों युक्तियें हैं फिर उत्तरके विस्तारका तो कहना ही क्या है ? इसकी मीमांसा कहीं सहजमें ही थोड़े होसकती है ?(स्पष्टरूपसे पद्मपादके प्रति) भाई ! यह ब्राह्मण कौन है ? कुछ समझमें नहीं आता ?

पद्मपाद-गुरुदेव ! मुझे तो ऐसा अनुमान होता है कि-यह कोई योगसिद्धिसम्पन्न तपस्वी, ब्राह्मणका रूप धरकर आये हैं (ब्राह्मणकी ओरको देखकर) अनुमान क्या प्रत्यक्षही देख लीजिये महाराज ! इनके नेत्रोंमें अलौकिक तेज दमक रहा है, भस्मसे ढकी हुई अग्नि कबतक लुकी रहसकती है, (क्षणभरके अनन्तर) अनुमान नहीं, गुरुदेव मैं सत्य कहता हूँ यह बूढ़े ब्राह्मण साधारण पुरुष नहीं किन्तु जगद्गुरु परमगुरु साक्षात् भगवान् वेदव्यास हैं—

शंकरः शंकरः साक्षाद्व्यासो नारायणो हरिः ।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते किङ्करः किङ्करोम्यहम् ॥

शंकराचार्य-(व्यासदेवके चरणोंमें प्रणाम करके) हे महाभाग ! इस छलनाको छोड़िये अब मैंने समझा कि आप साक्षात् व्यासदेव हैं अब एकबार प्रत्यक्ष दर्शन देकर इस दीन को कृतार्थ करिये ।

वेदव्यास-(अपने रूपसे प्रत्यक्ष होकर) हे शंकर ! तुम इस भूतलपर धन्य हो, मैंने शम्भुकी सभामें तुम्हारे भाष्यकी चर्चा सुनी थी; इसी कारण उसको देखने यहाँ आया हूँ ।

शंकराचार्य-आः ! धन्य है मेरा जीवन ! भगवन् ! कहाँ आपके गम्भीरसूत्र और कहाँ मेरी अल्पबुद्धि ?

वेदव्यास-(शंकराचार्यजीके हाथमेंसे भाष्य लेकर क्षण भर देखनेके अनन्तर) हाँ ! तुम्हारा यह भाष्य बहुत उत्तम बना है, इतने बड़े ग्रन्थमें कहींभी भ्रम वा प्रमाद नहीं है, हे शंकराचार्य ! योग, न्याय, सांख्य, मीमांसा आदि कोई तुम्हारे भाष्यकी समान नहीं है, क्यों न हो, जब कि तुम स्वामी गोविन्दपूज्यपादके शिष्य साक्षात् शिव हो, भाष्यको अनेकोंने रचा है परन्तु तुम्हारे सिवाय मेरे हृदयके भावको देव असुर मनुष्य ऋषि आदि कौन जान सकता है ! तुम्हारे समान अकाट्य-युक्तियें और प्रमाण किसीने नहीं लिखे, अब तुम एक काम और करो भूमि पर भेदवादी मूढमति दुष्ट नास्तिकोंका पराजय करके अपने मतका प्रचार करो ।

शंकराचार्य-महाराज ! अब मेरी आयु पूर्ण होचुकी है ।

वेदव्यास-सत्य है, किन्तु तुम्हारे विना वेदान्तके सच्चे तत्त्वको प्रकाशित करनेवाला दूसरा कौन है ? पातकियोंको सच्चा मार्ग कौन दिखावेगा ? यद्यपि देवसभामें तुम केवल सोलह वर्षका ही नियम करके मृत्युलोकमें आये थे, जो कि-आज पूरे होजायँगे, तो भी अभी तुमको बहुत कुछ कार्य करना शेष है, इतने समयमें अवतारको समाप्त न करो. अब दैवबलसे आठ वर्ष और मेरी योगशक्तिसे आठ वर्ष इस प्रकार सोलह वर्षकी आयु तुम्हारी बढाता हूँ, इतनेमें सब भेदवादियोंको जीत पृथ्वीका दिग्विजय करके ब्रह्माद्वैत मतका प्रचार करो अब मैं जाता हूँ ।

शंकराचार्य और शिष्योंका व्यासजीके चरणोंमें प्रणाम करना और व्यासजीका अन्तर्धान होना

शंकराचार्य-भक्तशिष्यों ! चलो सब देशोंमें भ्रमण करें, संन्यासीको एक स्थान पर अधिक नहीं रहना चाहिये।

सब शिष्य-जो आज्ञा गुरुदेव की।

(ऐसा कहकर सब जाते हैं)

❀ चतुर्थ-दृश्य ❀

प्रयागराज-त्रिवेणी का तट।

(जलता हुआ अग्निकुंड चारों ओर शिष्यों का खिन्न चित्त होकर खड़े होना)

भट्टपाद-प्रिय शिष्यों ! आज मेरे जीवनकी अन्तिम लीला है, यह अन्त समय है, सब मिलकर एक स्वरसे अमृतमय हरि गुणोंको गाओ, आज मैं संसारकी कलकलसे छूटकर शांतिमय भगवान्‌के नित्यपदमें परमसुख पाऊँगा।

शिष्य-हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

(फिर सबका एक स्वरसे गाना)

रटहु मन ! निशिवासर हरिनाम ॥ टेक ॥
साँचे मीत भक्तप्रेमी हरि, झूँठे सब धन धाम।
ब्रह्मा आदि देव ऋषि जिनके, पूजत पद अभिराम ॥
तात मात दारा सुत बान्धव, नहिं आवत कोई काम।
एक नाम हरिको दुख टारत, सुमिरहु आठों याम ॥

(नारायण नारायण कहते हुए श्रीशङ्कराचार्यजी का प्रवेश)

शंकराचार्य-(अपने मनमें) आहा ! यह कैसा अद्भुत दृश्य है ! आज नगर भर में इनके तुषाग्निमें प्राण त्यागनेका कोलाहल मचा है ? ऐसे प्रसन्न मुख होकर जलती हुई चिता में बैठना, धन्य धीरज ! धन्य तेज !

भट्टपाद-(शंकराचार्यको देखकर) भगवन् ! मैं आज अंत समय श्रीचरणोंका दर्शन पाकर कृतार्थ होगया। (जलती हुई चितामेंसे उठकर प्रणाम करनेके अनन्तर) देव ! आपने मेरे जीवनकी समाप्तिमें दर्शन दिया ?

शंकराचार्य-प्रिय भट्टपाद ! तुम यह क्या कह रहे हो ? कहाँ जाओगे ? क्या अपने स्वरूपको भूल गए हो ? मैं तो यहाँ तुमको अपना रचा हुआ वेदान्तभाष्य दिखानेको आया था, मैंने लोकोंके मुखसे यह संकटमय समाचार सुना था, परन्तु अब प्रत्यक्ष ही देखरहा हूँ, इस समय इस इच्छाको छोड़ो।

भट्टपाद (वेदान्तभाष्यको देखकर) भगवन् ! मेरी इच्छा थी कि श्रीमानके भाष्य पर वार्त्तिक बनाऊँ परन्तु भाग्यवश भयानक कालचक्रने मेरे उस मनोरथको पूरा नहीं होने दिया, परन्तु अन्तसमयमें स्वामीजीके चरणोंका दर्शन होगया, इस पातकीके लिये यही बडे गौरवकी बात है।

शंकराचार्य-प्रियवर ! मैं अनुरोध करता हूँ कि-इस समय ऐसा साहस न करो !

भट्टपाद-प्रभो ! मेरी इस धृष्टताको क्षमा करिये और मेरे पहिले वृत्तान्तको सुनिए-आप आज भी जिन बौद्धोंको चारों ओर देख रहे हैं, कुछ दिन पहिले यह चौगुने थे, इनके घोर उत्पातसे वैदिकधर्म दबता चला जाता था, वेद वेदान्त आदिको कुछ आदर नहीं रहा था, चारों ओर नास्तिकता छागई थी अपने धर्मकी ऐसी दशा देखकर मेरेचित्तको बडा कष्ट हुआ, तब मैंने राजा सुधन्वाकी सहायता ली और बौद्धमतका खंडन करनेको अटल प्रतिज्ञा की, इसकारण कोई और उपाय न होनेसे उनके दूषित ग्रन्थ पढने पड़े, हाय ! अभ्यासके गुण अवगुणोंको कौन मेट सकता है ? प्राणपणसे बौद्धग्रन्थोंका अभ्यास करते २ चित्त पर उनके ही सिद्धान्तोंका अंकुर जमने लगा; अन्तमें उसका ऐसा विषम-फल हुआ कि-एक दिन मैं वेदमें दोषदृष्टि करने लगा, परन्तु किसी पूर्वजन्मके पुण्यवश क्षण भरमें ही चित्तको बडी ग्लानि हुई; अपनेको धिक्कार देने लगा

उस समय मेरे नेत्रोंमें जल भर आया, यह देख और मेरे अभिप्रायको समझकर बौद्ध लोग क्रोधमें भरकर मेरे विनाशका उद्योग करने लगे, अन्तमें उन्होंने निश्चय करके मुझे एक बड़े ऊँचे स्थान परसे नीचेको ढकेल दिया, गिरते समय मैंने कातर भावसे कहा कि-'यदि वेद सत्य होंगे तो मेरा मरण कभी नहीं होगा' इस वेदोंके सत्य होनेमें सन्देहभरे वाक्यको कहनेसे तथा जिन बौद्धोंसे पढा उन्हींसे शत्रुता करनेके कारण गुरुद्रोही होनेसे मैं जैमिनि मुनिके मतानुसार आज हर्षके साथ अग्निमें भस्म होकर विधर्मशिक्षा और अपने धर्ममें सन्देह होनेका प्रायश्चित्त करता हूँ, हे भगवन्! मैं जानता हूँ आप साक्षात् शिवावतार हैं,इसकारण इस समय आपका दर्शन होनेसे मैं कृतार्थ होगया, अब मुझको प्राण त्यागनेका कुछ कष्ट नहीं है।

शंकराचार्य-स्वामिकार्तिकेय! क्या तुम अपने स्वरूपको भूल गये? भूतल पर तुम्हारा अवतार बौद्धमतको निर्मूल करनेके लिये हुआथा,फिर तुम्हारे कार्यमें दोष कैसे लग सकताहै? अब मैं तुमको प्राणदान देता हूँ, मेरे भाष्यपर वार्तिक बनाओ।

भट्टपाद-भगवन्! आपका कहना ठीक है, आप क्या नहीं करसकते हैं? मुझे जीवन देना आपके लिये कौन बात है? आप चाहें तो जगत्का संहार करके फिर सृष्टि रचसकते हैं, परन्तु तोभी मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं होनीचाहिये, अतएव चरण छूता हूँ, इस समय मुझको केवल ब्रह्माद्वैतभावका दान दीजिये जिससे संसारसागरमें परित्राण पाऊँ, और एक निवेदन यह है कि एक मण्डनमिश्र नामक कर्मकाण्डी माहिष्मती नगरीमें रहते हैं, यदि आप उसको जीत लेंगे तो नगर भर जीत लिया सा होजायगा, उसकी समान कर्मकाण्डी भारतवर्ष भरमें और कोई नहीं मिलेगा वह गृहस्थ धर्मको चलाने और निवृत्तिमार्ग

को हटाने वाला है, यदि अद्वैतमतका प्रचार करना हो तो पहिले उसका प्रचार करिये, मुझे निश्चय है कि-धर्मजगत्में आपका आसन सबसे ऊँचा होगा, अब मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये आज्ञा माँगता हूँ।

शंकराचार्य-सत्यमद्वैतम् ! सत्यमद्वैतम् !! सत्यमद्वैतम् !!!

सब शिष्य- सत्यमद्वैतम् ! सत्यमद्वैतम् !! सत्यमद्वैतम् !!!

शंकराचार्य-आहा ! धन्य है भट्टपादके धैर्य और तेजको, हे भट्टपाद ! तुम्हारी कीर्ति जगत्में चिरकाल तक रहेगी (लो मैं भी अब मण्डनमिश्रके समीप चलता हूँ)

सब शिष्य-हे महाराज ! हम सब आपके दर्शनसे निष्पाप होगये, इस कारण अपनेको धन्य मानते हैं।

शंकराचार्य-तुम्हारी सम्मति हो, अब मैं जाता हूँ।

(एक ओरको शङ्कराचार्य और दूसरी ओरको सबका जाना)

❀ पञ्चम-दृश्य ❀

माहिष्मती नगरीका मार्ग

(शिष्यों सहित शंकराचार्यजीका आना)

शंकराचार्य-शिष्यगण ! चलते चलते बहुत समय होगया, अब कुछ देर इस सामनेके शिवालयमें आराम करके चलेंगे, और सुना था कि इस मंदिरके समीप जो ग्राम दीखरहा है यहाँके शैव भेदवादी हैं किसी प्रकार उनसे भी बातचीत होकर उनका भ्रम दूर होजाना चाहिये (सामनेको देखकर) यह मंदिरमें बहुतसे शिवभक्त पूजनके भरे और खाली पात्र लिये हुए आ जा रहे हैं (क्षणभर विचारकर) आः आज शिवत्रयोदशी है, हम भी चलकर भगवान् भूतपतिके दर्शन करें

(शंकराचार्यजीका मन्दिरमें जाकर शिष्योंके साथ महादेवजीकी स्तुति करना और पूजकोंका शङ्कराचार्यजीकी दिव्यमूर्तिके दर्शनसे भौचक्के होकर एक ओरको संकुचित होकर खड़ा होना)

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं, गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम् ।
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं, महादेवमेकं स्मरामि स्मरामि ॥१॥
महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं, विभुं विश्वनाथं विभूत्यंगभूषम् ।
विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्निस्त्रिनेत्रं, सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम् ॥२॥
गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं, गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् ।
भवं भास्करं भस्मना भूषितांगं, भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ३
शिवाकान्त शम्भो शशांकार्धमौले, महेशान शूलिन् जटाजूटधारिन्
त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप, प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ४
परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं, निरीहं निराकारमोंकारवेद्यम् ।
यतो जायते पाल्यते येन विश्वं, तमीशं भजे लीयते यत्र विश्वम् ५
न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुर्न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा
न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेशो, न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं तमीडे॥
अजं शाश्वतं कारणं कारणानां, शिवं केवलं भासकं भासकानाम् ।
तुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनं, प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥ ७ ॥
नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते, नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते ।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य, नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ॥८॥
प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ, महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र ।
शिवाकान्त शांत स्मरारे पुरारे, त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः

शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे ।
गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन् ॥
काशीपते करुणया जगदेतदेक-
स्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि ॥ १० ॥
त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे
त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश
लिंगात्मके हर चराचर विश्वरूपिन् ॥ ११ ॥

स्तुति करनेके अनन्तर शंकरा जीका ध्यान मग्न होकर बैठना और
शिवोपासकोंका परस्पर बातचीत करना ।

१ शिवोपासक-भाई ! तुमने सुना होगा, कोई शंकराचार्य नामक संन्यासी सर्वत्र दिग्विजय करतेहुए अद्वैतमतका प्रचार कररहे हैं, मुझे तो अनुमान होता है, यह वही हैं, अनेकों पंडित शास्त्रार्थमें हार मानकर इनके शिष्य होगये हैं, न जाने हमारी क्या दशा होगी।

दूसरा-हाँ ! भाई कहते तो ठीक हो, यह वही हैं, इनके सामने जीभ हिलाना भी ठीक नहीं है, यहाँ तो हाँ हाँ हूँ हूँसे ही काम चलेगा।

तीसरा-चाहे जो कुछ कहो, परन्तु हैं यह बड़े विद्वान् ! लोग जो इनको शिवावतार कहते हैं सो ठीक ही है।

प्रथम-हाँ भाई ! अवतारी नहीं होते तो इतनीसी अवस्थामें ऐसी विद्वत्ता प्रसिद्धि और सब जगह विजय कैसे पाते ?

इतनेहीमें ध्यानमग्न शंकराचार्यजीके सन्मुख दिव्य मूर्ति भगवान् शिवका प्रकट होना ॥

शिव-सत्यमद्वैतम् !! सत्यमद्वैतम् !! सत्यमद्वैतम् !!!

इतना कहकर अन्तर्धान होना और भेदवादी शैवोंका शंकराचार्यजीकी शरण आना ॥

सब शिवोपासक-(शंकराचार्यजीके चरणोंमें गिरकर) महाराज ! हम आपकी शरण हैं, सत्य उपदेश देकर हमारा उद्धार करिये हम घोर नारकी हैं इसकारण ही अबतक अज्ञान रूप अन्धकारसे दृष्टिहीन होरहे थे, अब आपके उपदेशके अनुसार अद्वैत ब्रह्मका विचार करेंगे, भगवन् ! कृपा करके ज्ञानोपदेश देकर हमारा उद्धार करिये।

शंकराचार्य मैं तुमसे बडा प्रसन्न हूँ, अब तुमको अतिकठिन आत्मतत्त्व सुनाता हूँ, सावधानीसे ध्यान देकर सुनो यह जो तुम अपने सामने विशाल अनन्त संसारको देखरहे हो, यह एकमहान् चैतन्य है और ओत प्रोत भावसे सर्वत्र व्याप रहा है जिसके

कारण सकल ब्रह्माण्डकी शृंखला बँधीहुई है, यह पूर्ण परात्पर परब्रह्म चैतन्य ही अनादि कारण है जिसकी इच्छासे संसारकी सृष्टि स्थिति और प्रलय होती है, वेदान्तके मतमें एक वह निर्गुण ज्योतिःस्वरूप सत्य सार आनन्द स्वरूप परमपुरुष ही सब कुछ हैं उनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। इस नाशवान् जगत् में ब्रह्म ही सत्य नित्य और सार है चारों ओर और जो कुछ दीखरहा है सब भ्रम है। तुम, मैं, घर, द्वार, पशु, पक्षी, वन, लता आदि भुवनमें जो कुछ चराचर हैं सब ही मोह भ्रमकी छाया हैं। यही श्रुतिमें कहा है

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥

ऐसा ही उपनिषदादि वेदान्तका मत है। इसपर भी जो हम को तुम, मैं, घरद्वार आदिका भेदभाव प्रतीत होता है, इसका कारण अध्यास है, अर्थात् जो जो वस्तु नहीं है, उसको वह वस्तु समझना, संक्षेपसे भावार्थ यह है कि मनुष्य बडा अल्प-बुद्धि है सदा प्रवृत्तिके अधीन हुआ मायाचक्रमें घूमता रहता है इस कारण ही पूर्ण ज्ञानमय परमात्माको नहीं जानसकता है, सहजमें ही मोह आकर इसके हृदयके ऊपर अधिकार जमा लेता है और भीतरके विवेकको नष्ट भ्रष्ट कर डालता है, तब सब अपने वास्तविक स्वरूपको भूलजाते हैं, अंधपरम्परा पर विश्वास करके जीव अज्ञानका भण्डार बनजाता है, तब जो देह गेहादि मिथ्या हैं उनकोही सदा रहनेवाला समझने लगता है, जैसे कमल वायुका रोगी सकल विश्वको ही पीला देखता है, अथवा जैसे कोई अंधेरेमें भ्रमसे रस्सीको सर्प समझने लगता है तैसेही यह जीव भ्रमभरे नेत्रोंसे केवल मिथ्या जगत्की ओरको ही देखता है; परन्तु जब इसके हृदयके ज्ञान नेत्र खुलते हैं, तब भ्रमरूपी अन्धेरा दूर होता है, और अनन्त जगन्मय एक पूर्ण ज्ञानमय

चैतन्य ही दीखने लगता है वह चैतन्य मनुष्य मात्रमें एकसमान है सब चैतन्यवानोंमें पूर्ण. ब्रह्म समभावसे पुराहुआ है, अब विचारकर देखो ब्रह्म और मैं दोनोंमें अभेद है, यह विचार बडा गहन है इसका विचार बड़े ध्यानके साथ होसकता है, मनुष्य जब इस गम्भीर तत्त्वज्ञानको पाजाता है उसी दिन जन्म सफल होजाता है केवल मुखसे ही 'अहंब्रह्म' कहनेसे काम नहीं चलसक्ता है किन्तु मनसे सोऽहंभावका बर्ताव करके दिखाना चाहिये जब ही मनमें ब्रह्मतेजका प्रकाश होगा उसी दिन जीव मुक्त होजाएगा।

शिवोपासक-गुरुदेव ! क्या जीवात्मा और परमात्मा एक ही चैतन्य हैं ? हम तो समझते थे कि-भिन्न २ हैं।

शंकरा०-यह बड़ा भ्रम भराहुआ और युक्तिहीन नैयायिकों का मत है। मनमें विचारो कि-सर्वत्र शून्य ही शून्य है, उसमेंसे तुम्हारे शिर पर जो शून्य है (हाथकी मुट्ठी बाँध कर) मेरी मुट्ठीमेंका यह शून्य क्या उससे भिन्न है ? इसी प्रकार वास्तव में जीवात्मा और परमात्मा भिन्न २ नहीं हैं, मनुष्यको भ्रमवश भेद प्रतीत होता है और जब ज्ञानका प्रकाश होनेसे वह भ्रम दूर होजाता है तब कुछ भेदाभेद प्रतीत नहीं होता है,सर्वत्र अद्वैत,पूर्ण, ज्योतिःस्वरूप, चैतन्य, अनन्तव्याप्त, अनन्त संसार में आदि अन्तहीन, सर्वमूलाधार, सत्य; नित्य, चिदानन्दमय परात्पर, ब्रह्म ही दीखने लगता है,-अब तुम जीवका कर्त्तव्य सुनो-'मैं कौन हूँ संसारमें क्यों आया हूँ और मुझको क्या करना चाहिये' मनुष्यमात्रको यह विचार करना चाहिए, जब मन तत्त्वज्ञानकी खोजका अभिलाषी हो तब श्रेष्ठ गुरुकी शरण लेकर अमृत समान उपदेशोंको ग्रहण करे, तिनुकेकी समान हलका और वृक्षकी समान सहनशील बन जाय, सदा धर्मकी

रक्षा करे, हृदयमें तिल भर भी तमोभाव न रक्खे, सरल वि-श्वासी बना रहे, कभी मनमें कपटभाव न रक्खे, समयको सज्जनोंके संगमें वितावे, जीवनके प्यारे साथी क्षमा-दया-सरलता-शमन-दमन आदिका सेवन करे, यदि मन मोक्षका अभिलाषी होय तो वैराग्य और विवेक इन दो परम मित्रोंकी शरण लेय, तथा आत्मतत्त्वका विचार करे तब पूर्णज्ञानमय अनन्त ईश्वरकी प्राप्ति सहजमें ही होजायगी, विषकी समान जान विषयवासनाओंसे बचा रहे, जगत् भरको अपनी समान देखे, मनोमन्दिरमें सदा सर्वसार नित्य पूर्णज्ञानका प्रकाश करे, जिनकी आज्ञासे इस संसारमें आये हैं, जिनकी कृपासे सर्वोत्तम ज्ञानरूपी रत्न पाया है, सदा मनसा वाचा कर्मणा उनही की सेवा करना मनुष्य शरीरधारी जीवका परमकर्त्तव्य है। इसको छोडकर दूसरा कोई मुक्तिका उत्तम उपाय नहीं है।

शिवोपासक-गुरुदेव आपने हमारा उद्धार कर दिया, अब हम भी संन्यास आश्रमकी दीक्षा लेकर सदा आपकी सेवामें ही अपने जीवनको सफल करना चाहते हैं।

शंकरा०-भाई! इस आश्रमका निर्वाह होना सहज नहीं है जब आत्मतत्त्वको समझने लगे, आध्यात्मिक बलसे बलवान् होजाय, मायामोह जडभाव दूर होजाय, तब पुरुष अद्वैतमतका अधिकारी होसकता है,परन्तु जबतक जीव इस गम्भीर ज्ञानको न पासके तबतक, शिव-दुर्गा-विष्णु गणेशादि देवताओंका सदा सरल हृदयसे भजन और पूजन करता रहै। इसीके द्वारा धीरे२ ज्ञानका प्रकाश होकर पुरुष परमात्माके समीप होजायगा इसीकारण परम प्रवीण महाज्ञानी शास्त्रकारोंने ईश्वरस्वरूपकी भिन्न २ रीतिसे व्याख्या करी है। विश्वासके साथ ईश्वरकी भक्ति करनेवालेके सकल मनोरथ सफल होते हैं। परन्तु सूक्ष्म

भावसे विचार करने पर ब्रह्माण्ड भरमें एकके सिवाय दूसरी वस्तु ही नहीं है, जीवके मायाको त्यागने पर ब्रह्ममें कुछ भेद नहीं रहता है और भी धीरभावसे देखने पर प्रतीत होगा कि सकल वैदिक सम्प्रदायोंका परिणाममें एक ही फल निकलता है, परन्तु हाय! अज्ञानके कारण सब लोग इसको नहीं समझ सकते हैं; इसकारण वृथा गोलयोग करके आपसमें वैरभाव रखते हैं, परन्तु यह अद्वैतवाद ही ज्ञानियोंका माना हुआ मुक्ति का एकमात्र उपाय है।

शिवोपासक-भगवन्! यह तत्त्वोपदेश तो हमारी समझमें आगा परन्तु अब हम यह जानना चाहते हैं कि-मोक्षमार्गका आश्रय लेनेके लिये कौन २ उपाय श्रेष्ठ और सुलभ हैं?

शंकराचार्य-मुक्तिका उपाय तो विवेक और वैराग्य ही हैं परन्तु संसारमें रहकर सबसे विवेक और वैराग्यकी साधना नहीं होसकती है संसारकी घोर कुटिलता ममता मोह आदि बड़ी २ बाधाएँ देते हैं इस कारण भक्ति सहित संन्यास ही मोक्षमार्गका दिखलाने वाला है।

शिवोपासक-तब तो हे देव! अपनी चरणसेवाके लिये आज्ञा दीजिये।

शंकराचार्य-परमकरुणामय मङ्गलमूर्त्ति भगवान् ही तुम्हार मंगल करेंगे।

शिवोपासक-जय हो गुरुदेवकी, जय हो धर्म की जय हो सत्य की।

शंकराचार्य-देखो श्रेष्ठशिष्यों! अब विलम्ब करना उचित नहीं है, शीघ्र ही यात्रा करके आज ही मण्डनमिश्रसे मिलना है।

सब-भगवन्! जो आज्ञा हो हम सेवक उसका पालन करने को उद्यत हैं।

(सब जाते हैं)

❀ षष्ठ-दृश्य ❀

[माहिष्मती नगरी और रेवाका किनारा]

(तदनन्तर लवंगिका और वकुलिका नाम वाली मण्डनमिश्रकी दो दासियोंका प्रवेश)

लवंगिका-सखि ! आज तुम्हारी पण्डिताइन बडी निल्ला रहीं थीं, तूने ऐसा कौन अपराध किया था ?

वकुलिका-अरी वहिन ! मुझसे बड़ी भूल होगई थी, मैं आँगनमें खड़ी थी और मेरा ध्यान दूसरी ओर था इतने हीमें पण्डिताइनजी तुलसीका पूजन करनेको आई उसी समय मैं पीछेको हटी सो मेरे लहँगेकी लामन उनके लगगई इस कारण मुझे डपटरहीं थीं और कोई बात नहीं थी ।

लवंगिका-हाँ हाँ मैं समझगई ! तेरा ध्यान जहाँ था वह मैं जानती हूँ वह मरा रामा उधर आया होगा और कौन बात है

वकुलिका-(कुछ सकुचा कर सखि लवंग ! तू बूढी होनेको आगई परन्तु अभीतक तेरा चौल करनेका स्वभव नहीं गया ? देख तो तू खुल्लमखुल्ला ऐसी बातें कररही है, यदि यह बात पण्डिताइन सुनलें तो मेरी कौन दशा करें ?

लवंगिका-ओहो! तुझे ही तरुणाई चढी है और जगत् भरकी सब बूढी हैं। क्या हम कभी तरुणी नहीं थीं ? और हमने तो ऐसी बातें करी ही नहीं ? परन्तु आजतक किसीने जान भी पाया ? और तेरा सारा मौहल्ले भरमें डंका बजरहा है परसों पण्डिताइन भी कहरही थीं कि रामा और वकुलीमें रात दिन रहता है ।

वकुलिका-(घबड़ाकर) अरी बहिन ! सत्य कह रही है क्या ? पण्डिताइनसे किसने कह दिया है ।

लवङ्गिका-किसने कह दिया ? कह कौन देता ? तेरे गुणोंने कह दिया उस दिन पंडिताइन न्हाकर चुकी थीं तो तू केश पूछ

रही थी और मैं पहरनेकी साड़ी देरही थी तब मरेने तेरे पीछे आकर क्या किया वह मैंने भी देखा था, परन्तु उन्होंने देख कर भी अनदेखासा कर दिया, तुम दोनोंने यही समझा कि किसी ने देखा ही नहीं है, जब बिल्ली आँखें मूँदकर दूध पीती है तो वह यही समझती है कि मेरी समान किसीको दीखता ही नहीं।

वकुलिका-अब तो मेरा सबही भेद खुलगया तो अब छुपाकर ही क्या करूँ? सखि! तू मेरी माकी बराबर है, तू ही कोई उपाय बता, मैं कैसी करूँ? उसको देखते ही सब सुधबुध भूल जाती हूँ और उसकी भी ऐसी ही दशा होजाती है, इसीकारण ऐसी मूर्खता होजाय है।

लवंगिका-अरी! सोई तो मैंने कहा था कि तरुणाईमें सभी स्त्रियोंकी ऐसी दशा होजाय है परन्तु ऐसी निर्लज्जता कोई नहीं करे हैं, अरी! तुम तो दोनों यहाँ ही रहो हो, काम वामसे निवटकर रातको जो चाहे सो करो कोई रोकने वाला है? परंतु हरसमय चाहे जो कुछ करना तो मनुष्योंको शोभा नहीं देता है

वकुलिका-अरी! तू करे है सोतो सब ठीक है परन्तु उनकी मेरी चार आँखें हुईं कि मुझसे फिर रहा ही नहीं जाता, आज भी मरी वही तो बात होगई।

लवंगिका-आज क्या हुआ, बताओ?

वकुलिका-कल बसन्तपंचमी थी ना! सो रातमें हम दोनों ने यथेच्छ क्रीडा करी वही बातें सवेरे मेरे मनमें घूमने लगीं सो मैं आँगनमें खड़ी हुई न जाने क्या काम कररही थी परन्तु ध्यान मेरा रातकी बातोंमें ही था, इतने हीमें मेरा ऐसा ख्याल बँधा कि वह आकर मेरे ऊपर रंग डालते हैं इसकारण मैं पीछे को हटी, तभी तो पण्डिताइनजीके मेरे लहँगेकी लागन लगगई।

लवंगिका-देख सखि! ऐसी ही पागल बनी रहेगी तो शिर

पकडकर रोवेगी, खूब सावधानीसे काम लेना अच्छा है नहीं तो पंडितजीको खबर होनेपर दोनों कान पकड़कर निकाल दिये जाओगे। वैसे स्त्री पुरुषोंमें ऐसी बातें होनेको कौन नहीं जानता है? परन्तु समय समय पर ही सब बात सजे हैं, तू और तेरा पति ही संसारसे निराले नहीं हो आगे बहिन तू जान।

वकुलिका-अच्छा तो अब शीघ्र चलो, बातोंमें बड़ी देर हो गई इसमें भी पण्डिताइन जाने क्या समझने लगें? शीघ्र कलश भरकर चलना चाहिये (ऐसा कहकर नदीमेंसे कलश भरती हैं)

(इतने हीमें परदेमें नारायण शब्दकी ध्वनि होती है)

वकुलिका-(उदककर) यह काहेका द्वन्द है! (परदेकी ओरको देखकर) यह मरे कहाँसे आये? सखि लवंग! तूने यह भी देखा? देख तो मरे कितने संन्यासी आरहे हैं।

लवंगिका-(देखकर) ओः हो! अरी यह ततइयोंका छत्ता कहाँसे निकलपड़ा मुझे मालूम होता है, अब इनकी आयु पूरी होचुकी, जो इधरको आरहे हैं।

वकुलिका-हमारे पंडितजीको कहीं खबर होगई तो इन मरोंके शिर ही उड़वादेंगे मरे बावलोंने ढोंग कैसा बनाया है?

(तदनन्तर नारायण शब्दका उच्चारण करते हुए सब शिष्यों सहित श्रीशङ्कराचार्यजी आते हैं)

शंकराचार्य-शिष्यों! देखो इस माहिष्मती नगरीमें कैसी शोभा है यह रेवा नदी भी क्या सुन्दर लगती है, जिसका जल अमृतको भी लज्जित कररहा है, यह देखो दोनों पार बडे २ पक्के घाट बनेहुए हैं जिनपर सुंदर मण्डपोंकी भी कमी नहीं है जिनमें बैठेहुए यह सहस्रों ब्राह्मण मध्यान्ह सन्ध्या कररहे हैं, मानो यहाँ कर्मकाण्डकी मूर्त्ति विराजमान है धन्य! मंडनमिश्र धन्य!!

पद्मपाद महाराज! इस नदीपर जहाँ तहाँकी भूमि स्वेत क्यों होरही है?

शंकराचार्य-ठीक प्रश्न किया अरे! इस ग्राममें असंख्यों अग्निहोत्री हैं, उनकी भस्मसे जगहर यह दशा होरही है देखो ना! जिधर तिधरसे होमके धुएँकी सुन्दर सुगंध आरही है।

त्रोटक-तब तो गुरुजी ऐसा कहना चाहिये कि इस नगरीमें मीमांसाके पूर्वकांड (कर्मकांड) की वर्षा ही होती है।

शंकराचार्य-इसमें क्या संदेह है, अच्छा अब हमको मण्डनमिश्रका घर ढूँढना चाहिये (सामनेको देखकर) यह कोई स्त्रियें जल भररही हैं इन हीसे बूझना चाहिये (आगेको बढकर) हे स्त्रियों! हम बटोही हैं हमको कुछ बूझना है तुम बतादोगी क्या?

बकुलिका-शिव शिव, हे महापातकी! तू हमको मुख भी न दिखा तुझे इस परम सुन्दर तरुणाईको व्यर्थ करनेका उपदेश जिस चांडालने दिया है, उसका सत्यनाश हो (ऐसा कहकर अँगूठा दिखाती हैं)

शंकराचार्य-(हँसकर) अरी स्त्रियों! हमारे प्रारब्धमें ही ऐसा था, उसमें कोई क्या करसकता है? जो बात बीत गई उसकी चर्चा करनेसे कौन लाभ है? सो अधिक बातें न बनाकर जो हम बूझें सो मालूम होतो उसका उत्तर देदो।

लवंगिका-(आगे बढ़कर) अरे बाबा! तू क्या कहता है क्या तुझे आजकी पूरियोंकी ठीकठाक करनी है? तुम इन भिखारियोंके गेरुआ कपड़ोंको उतार डालोगे तो केवल पूरियें ही क्या जो कुछ चाहोगे सो ही इस नगरीमें मिलेगा।

शंकराचार्य-माताओं! हमें और कुछ नहीं चाहिये इस नगरीमें एक मण्डनमिश्र नामक पंडित है, उनके घर जाना चाहते हैं यदि तुम जानती होओ तो बतादो।

बकुलिका-वाह रे पागलों! सूर्यको देखनेके लिये क्या

मसालकी आवश्यकता होती है ? बनाती हूँ और जिससे मैं महाराज मंडनमिश्रजीके घरकी दासी होनेके योग्य हूँ यह तुमको ज्ञात होजायगा सुनो —

जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात्कीराङ्गना यत्र गिरा गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥

अरे भिक्षुकों ! जिनके द्वारपर दो पींजरे लटक रहे हैं उन में एक २ तूती है, तिन दोनोंमेंसे एक कहती है कि यह जगत् सत्य है तो दूसरी कहती है कि असत्य है, इसप्रकार जिनके द्वारपर टँगे हुए पक्षी संस्कृतमें वाद करते हैं उस स्थानको ही मंडन महाराजका समझना ।

लवंगिका-(आगे बढकर) अरे ! सुखका स्वाद न जानने वाले ! सुन—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं, कीराङ्गना यत्र गिरा गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥

अरे ! उनमेंसे एक तूती कहती है कि यह जगत् स्वतः सिद्ध है, तो दूसरी कहती है कि जगत् दूसरेकी सत्तासे भास रहा है ऐसी स्पष्ट संस्कृत भाषामें जिनके द्वारपरके पक्षी बातें करते हैं । उसी स्थानको मंडन महाराजका समझ लेना ।

शंकराचार्य-क्यों शिष्यों ! सुनी ना इन दासियोंकी बातें ? इससे अनुमान करलो, उस ब्राह्मणकी कैसी पंडिताई होगी ?

बकुलिका-सखि लवंग ! अब तो जलके कलश लेकर चलो बहुत देरी होगई पंडितानी क्या कहेंगी ?

(ऐसा कहकर सब जाते हैं)

पद्मपाद-मालूम होता है यह शास्त्रार्थ बड़ा अद्भुत होगा क्योंकि बराबरका जोड़ होनेपर ही युद्ध और शास्त्रार्थका चमत्कार देखने योग्य होता है ।



शंकराचार्य-अस्तु, अब हम ऐसे जायँगे तब तो काम नहीं चलेगा, क्योंकि-उनके द्वार पर पहरा रहता है, तिस पर भी अनेकों पण्डित हैं, उनको जीतने पर कहीं मण्डनमिश्रसे संभाषण होगा ! ऐसा करनेसे तो बीस वर्षमें भी काम सिद्ध नहीं होगा, इसकारण तुम सब इस रेवा नदीके किनारे परके शिवालयमें विश्राम करो, मैं योगमार्गसे झरोखेमेंको जाकर उसके घरके भीतर उतरता हूँ और एक साथ उससे ही मिलता हूँ, निबट कर फिर इसी शिवालयमें आजाऊँगा ।

सब शिष्य-जो आज्ञा ।

ऐसा कहकर नारायण नारायण शब्द करते हुए सब शिवालयमें और शङ्कराचार्य नगरीमें जाते हैं

❀ सप्तम-दृश्य ❀

(हाथमें पत्रपात्र लिये मण्डनमिश्र का आना)

मण्डनमिश्र-(आप ही आप) आज श्राद्धका दिन है, इस कारण व्यासजी और जैमिनि ऋषिको निमन्त्रण दिया है, परन्तु मध्यान्ह होनेको आगया, वह दोनों ऋषि अभी तक न जाने क्यों नहीं आये !

(इतनेमें घबड़ाए विद्यार्थीका आना)

मण्डनमिश्र-क्योंरे कृष्णमिश्र ! सब सामग्री ठीक होगई !

कृष्णमिश्र-गुरुजी ! पक्वान्न तो सब तयार है, ब्राह्मणोंकी ओरसे ही देर है ।

मण्डनमिश्र-और पूजाकी सामग्री, तिल पवित्री आदि सब इकट्ठे करके रख दिये हैं । ?

कृष्णमिश्र-हाँ सब ठीक करके रख दिया है, परन्तु यह तो बताइये श्राद्धके ब्राह्मण कौन हैं ? हमें तो मालूम नहीं है, आप बतावें तो मैं बुलानेको जाऊँ ।

मण्डनमिश्र-ब्राह्मणोंके नाम आनेसे पहिले किसीको भी

मालूम नहीं होसकते, श्राद्धका समय होते ही वह अपने आप आजायँगे, तुम और सब सामग्री ठीक रक्खो।

कृष्णमिश्र-(विचार कर अंगुली चलाकर ! अरेरे ! पूजाकी थालीमें तिल रखने तो भूल ही गया)।

मण्डनमिश्र-[हँसकर] क्यों बेटा ! भूल गया ना !

ऐसा कहकर शिष्य दौड़कर भीतर जाता है और घबड़ाया हुआसा आताहै

मण्डनमिश्र-देख और कुछ न रहगया हो !

कृष्णमिश्र-अब कुछ नहीं रहा, परन्तु महाराज ! व्यासदेव और जैमिनि ऋषि आगये।

मण्डनमिश्र-फिर वह हैं कहाँ ? यहाँ को लिवाता क्यों नहीं लाया ?

कृष्णमिश्र-उनको चरण धोनेके लिये जल देकर आपको समाचार देने आया हूँ।

मण्डनमिश्र-जा तो उनको लिवा कर आ, और पूजाकी सामग्री भी लेते आना।

कृष्णमिश्र-प्रतीत होता है आज श्राद्धके निमित्त इनको ही निमन्त्रण दिया गया है !

मण्डनमिश्र-हाँ हाँ यही बात हैं, जा शीघ्र जा।

तदनन्तर विद्यार्थी भीतर जाकर पूजाकी सामग्री लिये हुए व्यासदेव और जैमिनि ऋषिके साथ आता है।

कृष्णमिश्र-महाराज ! इधरको आइये, गुरुजी इधर ही हैं।

मण्डनमिश्र-[उठकर नमस्कार करके] आइये महाराज ! इस आसन पर बैठिये।

तदनन्तर व्यास जी और जैमिनि ऋषि आसन पर बैठते हैं

व्यासजी-मण्डन ! अब विलम्ब क्या है ? श्राद्धका काम चलता करो।

मण्डनमिश्र-बहुत अच्छा महाराज पैर धोकर आता हूँ

[ऐसा कहकर जलका लोटा लिये हुए हाथ पैर धोनेको उठ कर जाते हैं, इतने हीमें नारायण नारायण कहते हुए श्रीशंकराचार्य झरोखेमें को उतरते हैं, उनको देखकर दुःखित होते हुए] शिव ! शिव !! कौन हैरे यह दुष्ट ! पुण्यकर्मके समय अपना कालामुँह दिखाकर मुझको दुःखित करता है (फिर क्रोधमें भरकर उनसे प्रश्न करते हैं)

कुतो मुण्डी ॥

अरे यह मुण्डन, कराने वाला, कहाँसे ? आया ।

शंकराचार्य-(कुतः) इस पदका दूसरा अर्थ लेकर उत्तर देते हैं ।

आगलान्मुण्डी ॥

अरे कर्मी ! मैंने गले पर्यन्त मुण्डन कराया है ।

मण्डनमिश्र-(अपने प्रश्नका अर्थ दूसरी रीतिसे करा हुआ देखकर फिर कहते हैं)

पन्थास्ते पृच्छ्यते मया ॥

अरे ! कहाँसे मुँडा है यह नहीं बूझता हूँ, किन्तु तेरे मार्गको बूझता हूँ ।

शंकराचार्य-(इसका भी अर्थ बदलकर कहते हैं)

॥ किमाह पन्थाः ॥

अरे ! मेरे मार्गको बूझता है फिर उस मार्गने तुझको क्या उत्तर दिया ?

मंडनमिश्र-(इस प्रश्नका भी तैसे ही दूसरा अर्थ करने पर क्रोधमें होकर)

॥ त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि ॥

अरे मूर्ख ! मुझे मार्गने यह उत्तर दिया कि तेरी माता मुण्डा है

शंकराचार्य-(हँसकर)

पन्थानमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मंडन ॥

"त्वन्माते" त्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयादपृच्छकम् ॥

अरे नासमझ ? तुझे जो यह उत्तर मिला कि 'तेरी माता मुण्डा है' वह तुझ प्रश्न करने वालेके ऊपर ही घटसकता है, मुझसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है ।

मंडनमिश्र-(अपना कहना अपने ही ऊपर आनेके कारण अतिक्रोधमें भरकर)

॥ अहो पीता किमु सुरा ॥

अरे ! एसी ऐंड़ी बेंडी बहकी हुई बातें कहता है, कहीं सुरा (शराब) तो नहीं पीली है ?

शंकराचार्य-(पीता शब्दका पीना अर्थ न लेकर पीलेवर्णकी यह अर्थ करके बोलते हैं) ॥

न वै श्वेता यतः स्मर ॥

अरे मूर्ख पशु ! सुरा 'पीता' कहिये पीली नहीं होती है किन्तु 'श्वेता' कहिये स्वेतवर्णकी होती है,इसका स्मरण तो कर

मण्डनमिश्र-(ताली बजाकर)

किं त्वं जानासि तद्वर्णम् ॥

अरे नीच ! संन्यासी होकर भी तू सुराके वर्ण (रङ्ग) को जानता है ?

अहं वर्णं भवान् रसम् ॥

हाँ मैं वर्णको तो जानता ही हूँ,क्योंकि अकार ककार आदि वर्णोंमें कहा हुआ जो वेद है उसको मैं जानता ही हूँ, परन्तु तू उस सुराके स्वादको भी जानता है ।

मण्डनमिश्र-(बातको बदल कर) अरे निर्लज्ज ! यह तो रहने दे—

॥ कन्थां वहसि दुर्बुद्धे तव पित्रापि दुर्वहाम् ॥

॥ शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारा भविष्यति ॥

अरे बैल ! सब पशुओंका टाट पलान ढोनेको गधा होता है परन्तु गधेसे भी न उठसके ऐसी गुदड़ीको तो उठानेमें तुझे बोझा नहीं लगता है, अरे पातकी ! चोटी और यज्ञोपवीतका क्या तुझको बोझा लगता था ?

शंकराचार्य-अरे विषयलम्पट ! सुन—

कन्थां वहामि दुर्बुद्धे तव पित्रापि दुर्वहाम् ॥
शिखायज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति ॥

अरे ! तेरे बापसे भी न उठसके ऐसी गुदड़ीको मैं शरीरपर ओढता हूँ, और शिखा यज्ञोपवीत मुझे भारी नहीं लगते थे, परन्तु हाँ वह वेदको भार प्रतीत हुए ।

मण्डनमिश्र-अरे पुरुषार्थहीन ! सुन—

त्यक्त्वा पाणिगृहीतीं स्वामशक्त्या परिरक्षणे ।
शिष्यपुस्तकभारेच्छो व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता ॥

अरे ! स्त्रीकी रक्षा करनेकी शरीरमें शक्ति न होनेसे गृहस्थ धर्मको त्यागकर, शिष्योंके समूह और पुस्तकोंके भार उठाने वाला जो तू उस तेरी ब्रह्मनिष्ठा जानली ।

शंकराचार्य-अरे सुन !

गुरुशुश्रूषणालस्यात्समावर्त्य गुरोः कुलात् ।
स्त्रियां शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्मनिष्ठता ॥

अरे स्त्रीलम्पट ! गुरुसेवा करनेकी शक्ति न होनेसे ब्रह्मचर्य को समाप्त करके स्त्रियोंसे सेवा कराने वाला जो तू तिस तेरी कर्मनिष्ठता देखली ।

मण्डनमिश्र-अरे ! अधिक बडबड क्यों कररहा है ? तू जिस कारण संन्यासी बना है वह भी मुझको मालूम है सुन-

क्व ज्ञानं क्व च दुर्मेधाः क्व संन्यासः क्व वा कलिः ।
स्वाद्वन्नभक्ष्यकामेन वेषोयं योगिनां धृतः ॥

अरे कर्मभ्रष्ट ! तेरा यह ज्ञान कहाँ ? संन्यास कहाँ ? और तेरी दुर्बुद्धि कहाँ? तथा यह कलियुग कहाँ ? इनमें कहीं किसीका सम्बन्ध बनता है ? रोज रोज मिष्टान्न खानेको मिलता है, इसी कारण यह भिखारीका भेष बनारक्खा है, अरे नीच तूने जो पेटके लिये कर्म छोड़दिये, अरे ! इससे तो तूने अपने पेटमें छुरी ही भोंकली होती।

शंकराचार्य–अरे मूढ़ ! तू कर्मठ क्यों बना है यह मैं भी जानता हूँ, सुन—

क्व स्वर्गः क्व दुराचारः क्वाग्निहोत्रः क्व वा कलिः ।
मन्ये मैथुनकामेन वेषोऽयं कर्मिणां धृतः ॥

अरे ! यह तेरा कर्म कहाँ ? और तिससे मिलने वाला स्वर्ग कहाँ ? तथा यह अग्निहोत्र कहाँ ? और यह कलियुग कहाँ ? एकका दूसरेसे कुछभी मेल नहीं है केवल स्त्रियोंसे मैथुन मिलता है इस कारण ही यह कर्मीपना फैलाया है।

मण्डनमिश्र–अरे ! तू कैसा नीच है ? हरे हरे ! क्या स्त्रियों की निंदा करता है ? सुन—

स्थितोऽसि योषितां गर्भे ताभिरेव विवर्द्धितः ।
अहो कृतघ्नता मूर्ख कथं ता एव निन्दसि ॥

अरे ! जिन्होंने तुझको जन्म दिया और अनेकों दुःख सह कर बढाया, ऐसी स्त्रियोंकी जो तू निंदा करता है इसकारण तू बडा कृतघ्नी है, तेरा तो मुख भी नहीं देखना चाहिये।

शंकराचार्य–अरे पापोंके पहाड ! मैंतो कृतघ्न नहीं हूँ परन्तु तू जैसा है सो सुन

यासां स्तन्यं त्वया पीतं यासां जातोऽसि योनितः ॥
तासु मूर्खतम स्त्रीषु पशुवद्रमसे कथम् ॥

अरे ! तूने जिन स्त्रियोंका दूध पिया है और जिनकी योनिमें से निकला है, उन ही स्त्रियोंके साथ पशुओंकी समान रमण

करता है, तुझे लज्जा नहीं आती ? ऐसा वर्ताव तो केवल पशुओंमेंही होता है, इस कारण तू मातृगामी है, अरे तेरे पातक का तो प्रायश्चित भी नहीं है,

मण्डनमिश्र-(यह भी जैसेका तैसा उत्तर मिला, इसकारण हाथ उठाकर)

दौवारिकान् वञ्चयित्वा कथं स्तेनवदागतः ॥

अरे नीच ! मेरे ड्योढीवान्को धोखा देकर तू चोरकी समान कैसे चला आया? इस कारण तुझको अवश्य ही दण्ड मिलना चाहिये ।

शंकराचार्य-अरे ! तू चोर होकर दूसरेको चोर कहने वाले सुन—

भिक्षुभ्योऽन्नमदत्त्वा त्वं भोच्यसे स्तेनवत्कथम् ॥

संन्यासी महात्माओंको अन्न देना पड़ेगा, इस कारण द्वार पर सेवकको बैठाकर भीतर ही भीतर मिष्टान्न खाने वालेको शास्त्र चोर कहते हैं इसकारण चोर मैं नहीं हूँ तू ही दण्ड पाने के योग्य चोर है ॥

मण्डनमिश्र-अरे दुराचार सुन—

भ्रूणहत्यामवाप्नोषि पुत्रान्नोत्पाद्य धर्मतः ॥

अरे ! चांडाल तूने ब्रह्मचर्यको समाप्त करनेके अनन्तर गृहस्थमें जाकर पुत्र उत्पन्न नहीं किया,इसकारण तुझको बाल-हत्याका पाप लगा ।

शंकराचार्य-(हँसकर) अरे ! बालहत्या तो होली, परन्तु तुझको तो सबसे घोर हत्या लगी है सुन—

आत्महत्यामवाप्तस्त्वं अविदित्वा परमं पदम् ॥

अरे ! तुझको आत्महत्याका पाप लगा है,क्योंकि मैं कौन हूँ आगेको क्या होगा, इसका कुछ विचार न करके आत्माको जीवन मरणके चक्रमें डाल दिया; इस विषयमें शास्त्र कहता है कि

आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।

स्त्री, पुत्र, धन आदिसे हाथ धोने पडें तो कुछ चिन्ता नहीं परन्तु आत्माकी रक्षा करें, इसके विपरीत आत्माका नाश करने वाला जो तू तिस तुझको बता कौन दण्ड दिया जाय ?

मण्डनमिश्र-(यह बात भी अपने ही ऊपर आई इस कारण दाँतोंसे दाँत पीस कर)

कर्मकाले न सम्भाष्यस्त्वहं मूर्खेण साम्प्रतम् ।

अरे ! इस पुण्य कर्मको करते हुए मैं तुझसे मूर्खसे बोलना नहीं चाहता ।

शङ्कराचार्य-(हँसकर और मण्डनमिश्रके कहनेमें 'संभाष्य-स्त्वहं' यहां छन्दके विरामसें यतिविच्छेद हुआ जानकर

अहो प्रकटितं ज्ञानं यतिभंगो न भाषिणा ॥

वाह ! वाह ! अरे यतिभंग करके बोलने वाले तेरी पण्डिताईके प्रकाशकी तो खूब कलई खुली ॥

मण्डनमिश्र-अरे ! (उसी बातको साधनेके लिये)

यतिभंगे प्रवृत्तस्य यतिभंगो न दोषभाक् ॥

अरे मूर्ख ! यतिका भंग (पराजय) करनेमें जो प्रवृत्त हुआ है उसके कहनेमें यदि यतिभंग होजाय तो कुछ दोष नहीं है ।

शङ्कराचार्य-('यतिभंगे प्रवृत्त' इस मण्डनमिश्रके कथन पर कोठि कहकर उसकी अँगुलिसे उसीकी आँखोंको ठसी हुई सी करते हैं ॥

यतिभङ्गे प्रवृत्तेश्च पञ्चम्यन्तं समस्यताम् ॥

अरे बहुत ठीक कह रहा है, क्यों कि-'यतिभङ्ग' इस पदका पञ्चम्यन्त समास करो तब 'यतिसे भङ्ग अर्थात् पराजय' ऐसा ठीक २ अर्थ निकल कर, इतने समय तक जो बात चीत की है उसका परिणाम तू अपने आप ही निकाल लेगा ।

मण्डनमिश्र—(उत्तर न आनेसे झुँझलाकर)

मत्तो जातः कलञ्जाशी विपरीतानि भाषसे ॥

अरे ! क्या करूँ, यह क्षुद्र मांसभक्षी मत्त होकर इतना बड-बडा रहा है।

शङ्कराचार्य—('मत्तशब्दका) उन्मत्त अर्थ न करके 'मुझसे ऐसा अर्थ करते हुए कहते हैं)

सत्यं ब्रवीषि पितृवत्त्वत्तो जातः कलञ्जभुक् ॥

अरे ! ठीक ही है जैसा बीज तैसा अंकुर, तुझसे जो उत्पन्न हुआ वह अपने पिताकी समान क्षुद्र मांसभक्षी और उलटी बातें करने वाला ही है, इसमें आश्चर्य ही क्या ?

मण्डनमिश्र—(जब आगेको कुछ उत्तर न बन पड़ा तो हाथ मेंका लोटा पटक कर चिल्लाने लगे कि—) अरे कौन है रे, इस चाण्डालको पुण्यकर्ममें कैसे आने दिया ?, यज्ञ मण्डलमें कुत्तेके घुस आनेसे जैसा दुःख यज्ञ करने वालेको होता है, तैसा ही इस समय इसके यहाँ घुस आनेसे मुझको होरहा है, (दाँत चबाकर) क्या करूँ ! यदि इस समय मेरे पास तरवार होती तो इसका शिर ही काट लेता (जोरसे चिल्ला कर) कौन है रे ! इस दुष्टको उधर लेजा कर गरदन तो मारदो !

शंकराचार्य—(मण्डनमिश्रसे भी अधिक चिल्ला कर और कमंडल तान कर) अरे विप्ररूपी मदसे अन्धे ब्राह्मणोंमें पशु ! बड़ी भारी बमईके महासर्पकी समान स्त्री—पुत्र—सुवर्ण आदि रूप बिलमें छुपकर बैठा है, परन्तु (छाती पर हाथ रखकर) यह परम मंत्रवेत्ता उस बिल (भट्टे) मेंसे तुझको निकालकर, नाकमें नाथ डाल, दाँत तोड़ और संन्यासी बनाकर अपने साथ लेजाये विना नहीं छोडेगा, यह निश्चय जान।

(व्यासदेव और जैमिनि मुनि चकित होते हैं)

व्यासदेव-क्यों जैमिनिजी ! यह कौन हैं पहिचाना क्या ?

जैमिनि-गुरुदेव ! आपने जान लिया होगा, मेरी ऐसी योग्यता कहाँ है ?

व्यासदेव-अरे ! भविष्योत्तर पुराणमें जो शंकरावतार लिखा है, वह यही तो है।

जैमिनि-क्या यह कैलासनाथ हैं ? फिर इनके विषयमें कहना ही क्या ? परन्तु गुरुजी ! आपको इनके वादसे बचे रहना चाहिये और किसी प्रकार विवाद भी रुकवाना चाहिये

व्यासदेव-चुप रहो, वही युक्ति करता हूँ, अब यह मण्डन-मिश्रको छका भी बहुत चुके (मण्डनमिश्रसे) अरे ! मण्डन यह क्या गड़बड़ी कर रक्खी है, अपने धर्मकी ओर ही ध्यान देकर देख, मध्यान्हकालमें जो अतिथि आवे वह विष्णुकी समान पूजनीय है, इस कारण यह कैसा ही हो, इसको दुर्वचन न कह कर सत्कारपूर्वक अन्न दे, फिर चाहे जो कुछ बातचीत करना

मण्डनमिश्र-(सावधान होकर) आहा हा ! ठीक है, महाराज ! आपने बहुत अच्छा उपदेश दिया, पहिले मुझको क्रोध आगया था, इस लिये मैं क्षमा चाहता हूँ (ऐसा कहकर जलसे नेत्रोंको धोनेके अनंतर शंकराचार्यजीकी ओरको मुख करके) आप मुझसे बड़े हैं इसकारणमें आपको प्रणाम करता हूँ, मध्यान्हकाल में जो मेरे द्वारपर आवेगा वह चाण्डाल होने पर भी मेरा पूज्य है, इस कारण मैं आपको नमस्कार करता हूँ (ऐसा कह कर नमस्कार करके) महाराज ! भिक्षा करनेको चलिये।

शंकराचार्य-भाड़में जाय तेरी यह भिक्षा, यदि भिक्षा देनी हो तो प्रतिज्ञा करके मुझे शास्त्रार्थकी भिक्षा दे।

मण्डनमिश्र-बहुत अच्छा, मैं शास्त्रार्थसे डरने वाला नहीं हूँ मेरे भी भुजदण्ड फडक रहे हैं, तुमको शास्त्रार्थकी भिक्षा देता हूँ, परन्तु इस समय यह अन्नकी भिक्षा लेना चाहिये, तिस पर

आज मेरी पितृतिथि है सो आपको भी भोजन करानेकी मेरी इच्छा है।

शंकराचार्य-बहुत अच्छा, अरे! इसमें हमारी कौन हानि है हम तो यति हैं, जो हमको निमन्त्रण देगा उसीको पवित्र करने के लिये जायँगे, परन्तु अभी मध्यान्ह स्नान करना है उससे निवट कर आता हूँ।

ऐसा कहकर नारायण नारायण कहते हुए जाते हैं।

व्यासदेव-मण्डनमिश्र अब विलम्ब न करो श्राद्धका कर्म समाप्त होना चाहिये और वह यति अब आते होंगे सब तयारी है ना॥

मण्डनमिश्र-सब ठीक है, उनके आते ही आरम्भ होजायगा

व्यासदेव—परन्तु ब्राह्मण बैठेंगे कहां! क्या यही स्थान भोजन करनेका है?

मण्डनमिश्र-नहीं महाराज? इस पिछले दालानमें भोजन करना होगा।

व्यासदेव-अच्छा तो चलो उधर ही चल।

(ऐसा कहकर जाते हैं)

❁ अष्टम-दृश्य ❁

(रेवा नदीके किनारेका शिवालय)

(पद्मपाद त्रोटकाचार्य आदि शंकरार्यजीके शिष्य आते हैं)

पद्मपाद-त्रोटकाचार्य! गुरुमहाराज कहगये थे कि-'मण्डनमिश्रसे मिलकर आता हूँ, तुम इस शिवालयमें ठहरो' सो अभी तक नहीं लौटे, न जाने क्या कारण हुआ मुझको तो बडी चिंता हो रही है।

त्रोटक-चिन्ता क्यों करते हो? किसी कारण विलम्ब होगया होगा, उनको कष्ट पहुँचाने वाले तो त्रिलोकीमें कोई है ही नहीं

(इतने ही में परदेमें नारायण शब्दका उच्चारण होता है)

पद्मपाद-लो महाराज स्मरण करते ही आगये ।

(तदनन्तर शंकराचार्यका प्रवेश)

शंकराचार्य-(नारायण नारायण कहकर आसन पर बैठते हुए) हे शिष्यों ? मेरे आनेमें थोड़ासा विलम्ब होनेसे तुमको अधिक चिंता तो नहीं हुई !

पद्मपाद-हे गुरो ! आपका वियोग तो क्षणभरके लिये भी हमको असह्य होता है, फिर इतने समयका तो कहना ही क्या !

शंकरा०-अच्छा अब उधरका वृतान्त तो सुनो मैं मण्डनमिश्र के घरके झरोखेमेंको होकर बीच घरमें जा ही उतरा उससमय वह श्राद्धके काममें लगा हुआ था, फिर मेरे ऊपर दृष्टि पडतेही बड़े क्रोधमें भरकर दुर्वचन कहने लगा, तब मैंने भी उसको तैसे ही उत्तर दिये, अन्तमें उससे शास्त्रार्थ करनेकी प्रतिज्ञा करवा कर उसके ही यहाँ भिक्षा करके चला आरहा हूँ, अब वह यहाँ आवेगा तब उसका और मेरा शास्त्रार्थ होगा ।

त्रोटक-महाराज ! आपका और मण्डनमिश्रका शास्त्रार्थ बडा ही अलौकिक होगा देखिये कब देखनेको मिले !

(इतने ही में बहुतसे पंडितोंके साथ मण्डनमिश्र आते हैं)

मण्डनमिश्र-(शंकराचार्यजीके सामने आसन बिछा बैठकर) अजी संन्यासीजी ! तुम्हारा शास्त्रार्थका हौंसला देखने आया हूँ, अब शास्त्रार्थका प्रारम्भ करिये ।

शंकराचार्य-(हँसकर) बहुत अच्छा !, परन्तु मैं ऐसे शास्त्रार्थ नहीं करूँगा निरर्थक शास्त्रार्थ करनेकी मुझको आवश्यकता नहीं है, पहिले दोनों ओरसे कुछ २ प्रतिज्ञा होनी चाहिये तब शास्त्रार्थ होगा ।

मण्डनमिश्र-अरे ! प्रतिज्ञाकी क्या आवश्यकता है ? दोनों का शास्त्रार्थ होने पर जो परिणाम निकलेगा वह निकल ही आवेगा ।

शंकराचार्य-बाः ! ऐसा कभी नहीं होसकता प्रतिज्ञा विना हुए मैं एक अक्षर भी न बोलूँगा ।

मण्डनमिश्र-अच्छा, ऐसा ही सही, तो मैं अपना सिद्धान्त कहकर प्रतिज्ञा करता हूँ उसको सुनो-उपनिषद्भाग, आत्म-स्वरूपका वर्णन करनेके लिये नहीं है, किंतु क्रियाको ही दिखाता है, क्यों कि—शब्दमें कोई तो क्रिया दिखाई देती ही है, वह क्रिया आत्माका स्वरूप कहने वाली सिद्ध नहीं होसकती कर्मसे ही मुक्ति होती है, इस लिये जबतक जिये तब तक कर्म करने चाहिये यह मेरा सिद्धान्त है, यदि तुम इसका खण्डन करदोगे तो मैं सफेद कपडे उतारकर गेरुआ कपड़े पहिन लूँगा और तुम्हारा शिष्य होकर संन्यास धारण करलूँगा, यदि मैं ऐसा न करूँ तो अपने बयालीस पूर्वपुरुषों सहित नरक पाऊँ यह मेरी प्रतिज्ञा है, अब तुम क्या प्रतिज्ञा करते हो वह भी बताओ ? ।

शंकराचार्य-बाः ! अब कोई हानि नहीं है, अब मेरी भी प्रतिज्ञा सुनो "सच्चिदानन्द ब्रह्म एक ही है, अनादि अविद्या के कारण भ्रमसे जैसे सीपीमें चांदीकी प्रतीति होने लगती है, तैसे ही वह ब्रह्म जगत्‌के आकारमें दीखरहा है, उस ब्रह्मका ज्ञान होनेसे सब प्रपञ्चका लय होजाता है, इस विषयमें उप-निषद्‌ प्रमाण है जीव और ईश्वरमें भेद नहीं है कर्मसे कभीभी मुक्ति नहीं मिलसक्ती, विचारके द्वारा आत्मज्ञानसे ही मुक्ति मिलती है यही मेरा सिद्धान्त है, यदि तुम इसका खण्डन कर दोगे तो इन गेरुआ वस्त्रोंको त्यागकर सफेद वस्त्र पहिन लूँगा तथा विवाह करके तुम्हारा शिष्य होजाऊँगा, और यदि ऐसा न करूँ तो मैं भी बयालीस पूर्वपुरुषों सहित नरकमें जाऊँ ।

मण्डनमिश्र-दोनोंकी प्रतिज्ञा तो होही गई और इन सब सभा-सदोंने सुनली अब शास्त्रार्थ छिड़ना चाहिये,

शंकराचार्य-नहीं अब भी एक बात रह ही गई भला यह तो बताओ मेरा तुम्हारा शास्त्रार्थ बडा भारी होगा, इधर प्रतिज्ञा भी होगई परन्तु शास्त्रार्थमें हारा कौन और जीता कौन इसका निबटारा करनेके लिये कोई तीसरा मध्यस्थ भी तो होना चाहिये जोकि इस सभामें आकर बैठे नहीं तो शास्त्रार्थ करनेका फल ही क्या होगा ? ।

मण्डनमिश्र-अब मध्यस्थ बननेको तीसरा कौन आवे यह तुम ही बताओ ?

शंकराचार्य-मध्यस्थ तो तुम्हारे घरमें ही,है तुम्हारी स्त्री साक्षात् सरस्वतीका अवतार है, यह मैं जानता हूँ इस कारण हमारे शास्त्रार्थमें वही मध्यस्थ होनी चाहिये उसको यहाँ बुलवाओ ।

मण्डनमिश्र-बहुत अच्छा (शिष्यकी ओरको मुख करके) अरे कृष्णमिश्र! जा शीघ्रतासे घर तो जा और उससे मेरी आज्ञा कहकर यहाँ लिवाला ।

कृष्णमिश्र-बहुत अच्छा गुरुजी (ऐसा कह परदेके भीतर जाकर और फिर सरस्वतीके साथ आकर उससे कहता है) माताजी! गुरुजी और संन्यासीजी यह सामने विराजरहे हैं उधर हीको चलिये ।

सरस्वती-(यति और पतिको प्रणाम करके महाराज ! इस भरी सभामें मुझ अबलाको क्यों बुलवाया है ?

मण्डनमिश्र इसका उत्तर यह यह यति ही देंगे इनसे ही बूझो ।

शंकराचार्य-सरस्वति ! इधर ध्यान दो, यहाँ तुमको इस कारण बुलवाया है कि तुम्हारे पतिका और मेरा शास्त्रार्थ होगा उसमें यदि इन्होंने मुझको जीत लिया तो मैं इनका शिष्य हो जाऊँगा और मैंने इनको जीतलिया तो इनको मेरा शिष्य होना पड़ेगा, यह प्रतिज्ञा पहिले होचुकी है, परन्तु हारजीतका निश्चय

करनेके लिये कोई तीसरा मध्यस्थ चाहिये सो हम दोनोंने इस कार्यके लिये तुम्हें चुना है अब तुम उस स्थानपर बैठकर हम दोनोंमें कौन हारता है और कौन जीतता है, इसका निश्चय करो

सरस्वती-महाराज! मैं ! स्त्री हूँ;तुम्हारे इस अपार शास्त्रार्थ में भला मैं क्या समझ सकूँगी ? इसकारण मैं मध्यस्थ बनने के योग्य नहीं हूँ ।

शंकराचार्य-सरस्वति ! तुम मुझको क्या सिखाती हो ! मैं तुमारी योग्यताको जानता हूँ तुम सब विद्याओंकी माता हो, फिर ऐसी कौन विद्या है कि जिसका हम शास्त्रार्थ करें और उसको तुम जानती नहीं हो ! इस कारण तुमारा यह कहना ठीक नहीं है।

सरस्वती-आप जो कुछ कहते हैं यह कदाचित् ठीक हो परंतु एक दूसरी अड़चन और है, मेरे पतिके साथ शास्त्रार्थ होगा, उसमें मैं मध्यस्थ बनूँ यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि-यदि उन की जय हुई और मैंने उचित समझकर यही बात कही तो मुझ को पक्षपातका दोष लगेगा और आपकी जय हुई तब ऐसा कहनेपर, पतिसे द्रोह करनेका कलङ्क लगेगा इस कारण आप इस झगडेमें मुझको न फँसावें।

शंकराचार्य-हमारे शास्त्रार्थको समझने वाला तुमको छोड कर दूसरा और कोई है ही नहीं तथा पक्षपातको छोड़कर वर्त्ताव करनेवाले मध्यस्थको कोई दोष देही नहीं सकता ।

सरस्वती-और भी एक बात कहनेको रहगई अर्थात् घरमें अग्निहोत्र है, कामकाजकी बहुतसी अड़चन है तिसपर भी पति यहाँ शास्त्रार्थमें लगजायँगे, इस कारण मुझे तो घर अवश्य ही रहना पडेगा, अतः मैंने एक यह युक्ति विचारी है कि मैं आप दोनोंके कंठमें एक २ फूलोंकी माला पहिराये देती हूँ फिर आप शास्त्रार्थका आरम्भ करिये, शास्त्रार्थ करते २ जिसकी पुष्प-

माला कुम्हला जाय उसीको हाराहुआ और जिसके कंठकी पुष्पमाला ज्योंकी त्यों वनी रहे उसको जीतने वाला समझ लेना ऐसा होनेपर आपको मध्यस्थकी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी।

शंकराचार्य–धन्य ! सरस्वती धन्य !! अच्छी युक्ति निकाली वास्तवमें तू वडी चतुर है अच्छा तो वह पुष्पमाला दोनोंको पहिरा दे और तू जा।

सरस्वती–बहुत अच्छा (ऐसा कहकर दोनोंके कंठमें पुष्पमाला पहिराकर जाती है)।

मण्डनमिश्र–क्यों यतिजी ! सब तयारी तो हो होगई अब शास्त्रार्थका प्रारम्भ होना चाहिये।

शंकराचार्य–अब कुछ चिन्ता नहीं मेरा सिद्धान्त तुमने सुनही लिया, पहिले आप ही प्रश्न करें।

मण्डनमिश्र–अच्छा संन्यासीजी ! आप जीव और ईश्वरकी एकता मानते हैं, परन्तु मुझे तो यह ठीक नहीं मालूम होता ?

शंकराचार्य-श्वेतकेतु आदि शिष्योंसे उद्दालक आदि महर्षियों ने जीव और ईश्वरकी एकता कही है, ऐसा वेदमें कहा है, यही प्रमाण है।

मण्डनमिश्र–वेदमें लिखे हुए "तत्त्वमसि" आदि वाक्य "हुँ फट्' आदिकी समान केवल जप करनेके लियेही हैं, उनका और कोई अर्थ नहीं है।

शंकराचार्य–'हुँ फट्' इत्यादि वाक्योंमें, अर्थ कुछ हैही नहीं इस कारण ज्ञानी पुरुषोंने उनको जपके लिये नियत कर लिया है और 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंका अर्थ तो स्पष्ट प्रतीत होता है फिर वह जपके लिये हैं यह बात कैसे कही जासकती है

मण्डनमिश्र–यदि इस वाक्यमें जीव और ईश्वरकी एकता का अर्थ भासता है तो वह यज्ञ करनेवालेकी प्रशंसा समझना

चाहिये, क्योंकि तुम उसका वाक्यार्थ-जीव और ईश्वरकी एकतापर करते हो यह बात किसीकी बुद्धिमें जम नहीं सकती इस कारण यज्ञ करने वालेकी प्रशंसापर अर्थ करना ही ठीक है, इस कारण सब उपनिषद् कर्मकी पूर्णताको दिखाने वाले हैं यही सिद्ध होता है।

शंकराचार्य-"आदित्यो यूपः" इत्यादि कर्मकांडमेंके वाक्योंका अर्थ कर्मकी प्रशंसामें करना ठीक है;तैसे ही ज्ञानकांडमेंके 'तत्त्व-मसि' आदि वाक्योंका अर्थ करनेमें कोई प्रमाण नहीं है।

मण्डनमिश्र-तो 'मनकी उपासना ब्रह्मरूपसे कर' ऐसा कहनेके लिये जैसे 'अन्नं ब्रह्म' इत्यादि वाक्य हैं तैसे ही उपासनापरक अर्थ हो परन्तु ऐक्य अर्थ करना ठीक नहीं है।

शंकराचार्य-मनकी ब्रह्मरूपसे उपासना करे, इत्यादि विधि वाक्यके अनुसार 'तत्त्वमसि' इस वाक्यमें विधि नहीं है, फिर उपासनापरक अर्थ कैसे होसकता है?

मण्डनमिश्र-तत्त्वमसि आदि वाक्योंमें विधि अर्थ स्पष्ट नहीं दीखता है तब भी विधिकी कल्पना करना चाहिये, 'रस्सी है साँप नहीं है' ऐसा कहते ही साँपकी भ्रान्ति दूर होकर उसी समय भय जाता रहता है; तैसा 'तत्त्वमसि' इस वाक्यको सुनते ही नहीं होता है तथा सुख दुःख आदि होते हैं, इसके सिवाय तत्त्वमसि वाक्यके श्रवणके अनन्तर मनन निदिध्यासन आदि कहे हैं, इस कारण तत्काल फल नहीं होता है अतः उपासना परक विधि अर्थ ही कर लेना चाहिये।

शंकराचार्य-उपासनापरक अर्थ करनेसे स्वर्ग अथवा ध्यान, इसप्रकार मोक्षको मानसिक कृत्रिमपना प्राप्त होगा।

मंडनमिश्र-अच्छा उपासनापरक अर्थ नहीं सही तो-जीव को ब्रह्मकी उपमा देते हैं, ऐसा अर्थ कर लेना चाहिये।

शंकराचार्य-जीवको जो ब्रह्मकी उपमा देते हो तहाँ यदि चेतनताके विषयमें उपमा कहोगे तो इस सर्वत्र प्रसिद्ध अर्थके उपदेशकी आवश्यकता ही क्या है ? और यदि सर्वज्ञपनेके गुणोंकी उपमा कहोगे तो जीवके सर्वज्ञ कहनेका दोष तुम्हारेही मतमें आवेगा।

मंडनमिश्र-सर्वज्ञपना आदि गुण मायासे ढक रहे हैं फिर उपमा लेनेमें हानि ही क्या है ?

शंकराचार्य-यदि ऐसा है तब तो-जीव ईश्वरके भेदभाव की शंका मायाकी करी हुई है, इस बातको तुम अपने आप ही मान रहे हो फिर भी 'तत्त्वमसि' इस वाक्यका अर्थ एकताको जतानेमें नहीं है, ऐसा खोटा आग्रह तुम विद्वान् होकर क्यों करते हो ?

मंडनमिश्र-ऐसी एकता यद्यपि भासती है, तथापि मैं ही ईश्वर हूँ, ऐसी प्रतीति किसी को नहीं होती है, इस कारण 'तत्त्वमसि' आदि वाक्योंको केवल जपके निमित्त ही मानना उचित है।

शंकराचार्य-यदि इन्द्रियोंके द्वारा भेदज्ञान सिद्ध होजाय तो अभेदका वर्णन करने वाली श्रुतियोंमें बाधा पड़े और ऐसा होता है नहीं, क्योंकि-वाक्यके ज्ञानको इन्द्रियें जान ही नहीं सकतीं।

मंडनमिश्र इन्द्रियें जान कैसे नहीं सकतीं ? मैं ईश्वरसे निराला हूँ, ऐसा भान क्या जीवको नहीं होता है ?

शंकराचार्य-अनात्म पदार्थोंका भान होजाय, परंतु आत्मा इन्द्रियोंसे कभी नहीं जाना जासकता।

मंडनमिश्र-आत्मा और चित्त, इन दोनों ही को द्रव्य माना है, फिर आत्मा इन्द्रियोंसे नहीं जाना जाता है, यह कहना ठीक नहीं है।

शंकराचार्य-आत्मा व्यापक और सूक्ष्म है, इन दोनों ही

कारणोंसे इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जाना जासकता, जिसके अवयव (भाग) होसकें वह सावयव पदार्थ ही इन्द्रियोंसे जाना जासकता है ।

मण्डनमिश्र–आत्मा वेद्य (जानने योग्य) नहीं है तो श्रुतियों ने जीवात्मा और परमात्माकी एकता कैसे जताई है ?

शंकराचार्य श्रुतियोंने 'अविद्योपाधि जीव' और 'मायोपाधि ईश्वर' ऐसा भेद कहकर फिर दोनोंकी उपाधियोंका त्याग कहा है तिससे आप ही एकता सिद्ध होजाती है, इसकारण आत्मा वेद्य नहीं है ।

मण्डनमिश्र–जीव और ईश्वरको औपाधिक (मिथ्या) कहते हो 'द्वा सुपर्णा' इत्यादि अनेकों वेदवाक्योंमें जीव और ईश्वर दोनोंका स्वरूप क्यों वर्णन किया है ? और आत्माके सिवाय अन्य पदार्थोंको अचेतन कहोगे तो जीव और ईश्वरके विषय में प्रत्यक्ष चेतनता क्रिया कैसे दीखती है ? इसका ठीक २ उत्तर बताओ ।

शंकराचार्य–श्रुतियोंने, जगत्में अज्ञानके कारण जो भेदकी प्रतीति है उसका वर्णन मात्र करके वह भेद झूँठा, मायाका रचा हुआ है यह बात दिखाकर अन्तमें अभेदका ही वर्णन किया है, तिससे भेद दिखाने वाली सब श्रुतियें बाधित होगईं अब जीव तथा ईश्वरके विषें चेतनता रूप कर्त्तापनेका जो धर्म दीखता है वह मिथ्या है तथा वह जीव ईश्वरका अपना नहीं है किन्तु जैसे तपाया हुआ लोहेका गोला जलाता है यहाँ जलाने का धर्म अग्निका है लोहेके गोलेका नहीं है परन्तु लोहेका गोला जलाता है, ऐसा झूटे ही समझा जाता है तिसी प्रकार पांच ज्ञानेन्द्रियोंमें तथा मन आदि अन्तःकरणके विषयमें जो ज्ञानका व्यापार दीखता है वह सब आत्मामेंही होता है और इन्द्रियोंमें

जो उस ज्ञानकी प्रतीति होती है वह मिथ्या है जीव और ईश्वर यह दोनों परछाहीं और उष्णता (गरमी) की समान हैं जैसे इन दोनोंका कारण सूर्य इन दोनोंसे निराला ही है तैसे ही आत्मा सबसे भिन्न होकर सबका कारणरूप है, यही सत्य तत्त्व है और इसका ज्ञान न होनेका ही नाम अज्ञान है, इस अज्ञानसे ही बन्ध शोक आदि होते हैं और हैं ऐसा समझनेको ही ज्ञान कहते हैं, उस ज्ञानसे सकल शोक बन्ध आदिका नाश होकर मोक्ष मिलता है अर्थात् प्राणी जन्म मरणके चक्रसे छूट जाता है, इस ज्ञानका मुख्य अधिकारी श्रुतियोंके कथनके अनुसार शान्त, दान्त आदि गुणोंसे युक्त होना चाहिये, ऐसे अधिकारियोंको विचार करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। कर्म उपासना आदि सब चित्त निर्मल होनेके साधन हैं, इनसे मोक्ष नहीं होता है, इस कारण हे मण्डनमिश्र ! अपने कर्मोंके दुराग्रहको छोड़कर विचार करो तब यह संसार मिथ्या भास रहा है, केवल अधिष्ठान आत्मा ही सत्य है, उसीके कारण यह संसार भी सत्य सा दीखता है, जैसे जलमें तरङ्गों या सुवर्णमें गहनों की प्रतीति होती है, उनमें सत्य जल और सुवर्ण ही होते हैं, तरंगें और गहनोंके आकार मिथ्या होते हैं तैसे ही इस जगत् में सब आकार मिथ्या हैं सत्य एक सच्चिदानन्द ब्रह्म ही है, यह बात तुमको प्रत्यक्ष भासने लगेगी और तत्काल मुक्त होजाओगे

मंडनमिश्र–परन्तु मुझे प्रतीत होता है अब सायंसन्ध्याका समय होगया, इसलिये आज यहाँ ही शास्त्रार्थ रोक देना चाहिये, कलको मैं नित्यकर्मसे निवटकर फिर यहाँ ही आऊँगा तब शास्त्रार्थका प्रारम्भ होगा।

शंकराचार्य–ठीक है, आप सायंसन्ध्याके लिये जाइये हम भी अब नदी पर जाते हैं।

(ऐसा कहकर सब जाते हैं)

❀ अष्टम दृश्य ❀

(तदनन्तर पण्डित यज्ञदत्त और पण्डित ब्रह्मानन्दका प्रवेश)

यज्ञदत्त-क्यों ब्रह्मानन्दजी ! आज आठ दिन होगये तुम्हारा कहीं पता ही नहीं लगा एक दो बार मैं तुम्हारे घर भी गया परन्तु तहाँ भी भेंट नहीं हुई ऐसे किस, आवश्यक काममेंमें लग रहे थे

ब्रह्मानन्द-वास्तवमें आजकल मेरे न मिलनेका एक ऐसा ही कारण है आजकल मण्डनमिश्र और शंकराचार्यजीका शास्त्रार्थ होरहा है ना ! वस वही आनन्द देखनेके लिये मैं दोनों समय शिवमंदिरमें जाता हूँ।

यज्ञदत्त-मैंने भी वह समाचार, यहाँतक सुना था, कि सरस्वतीने उन दोनोंके कंठमें पुष्पमाला पहिराई, परन्तु यह नहीं मालूम आगेको क्या हुआ, इस कारणही मैं तुम्हारे पास आया हूँ

ब्रह्मानन्द-हाँ तो आगे दूसरे दिनसे उन दोनोंका शास्त्रार्थ होने लगा, क्या कहूँ उन दोनोंकी वाणीका कैसा विलक्षण प्रवाह चलता था। बड़े २ पंडित बैठे हुए थे परन्तु कितने ही स्थानपर उनकी भी समझमें नहीं आता था कि यह दोनों क्या कहरहे हैं, दोनों ही अस्खलित बोलनेवाले थे मंडनमिश्रका बोलना तो मैंने पहिले भी कितनेही वार सुना था इस परन्तु शास्त्रार्थके बोलनेके सामने यह सौवाँ भाग भी नहीं था, वह संन्यासी तो वड़े ही विलक्षण हैं, एक बार मण्डनमिश्रके मुखसे प्रश्न निकला कि तत्काल विना विचारे ही समाधान करके उस पर अपनी कोटी करदेते हैं इस प्रकार उस शास्त्रार्थके समय सुनने वालोंको भी तो अपने शरीरका भान नहीं रहता है, सब सभा तसवीरमें खिचीहुई सी निश्चल बैठी रहती है।

यज्ञदत्त-अच्छा यह तो बताओ, इस शास्त्रार्थको दिन कितने होगये और किस रीतिसे होता है ?

ब्रह्मानन्द–प्रति दिन दोघड़ी दिन चढे शास्त्रार्थका प्रारम्भ होता है, इससे पहिले दोनों महात्मा अपने स्नान संध्या आदि नित्य अनुष्ठानसे निबट लेते हैं, इस प्रकार मध्यान्ह काल पर्यन्त बराबर शास्त्रार्थ चलता रहता है, । मध्यान्हके समय सरस्वती शिवालयमें आकर पतिको भोजनके और यतिको भिक्षाके लिये लिवानेको आती है तब शास्त्रार्थ बन्द होकर दोनों भोजनको जाते हैं, फिर कुछ काल विश्राम होकर सूर्यास्तपर्यन्त शास्त्रार्थ होता रहता है, ऐसे आज छः दिन बीतचुके ।

यज्ञदत्त परन्तु शास्त्रार्थमें हारता हुआ पक्ष किसका है, इस का तो अनुमान होगया होगया, मित्र ! यदि वह संन्यासी हार गया तब तो बडी मौज होगी ? मैं तो दश सहस्र ब्राह्मणोंको जिमाऊँगा ।

ब्रह्मानन्द- छिः छिः ऐसा विचार तो स्वप्नमें भी न करना वह संन्यासी तो साक्षात् बृहस्पति आजायँगे तो उनकोभी विना जीते नहीं छोड़ेगा फिर इनकी तो बात ही क्या ? तुमने उनका भाषण सुना नहीं है तब ही ऐसा कहरहे हो, आजतक मेरी भी कर्ममार्ग पर बडी श्रद्धा थी और मैं संन्यासियोंका बड़ा तिरस्कार करता था परन्तु जबसे उन महात्मा संन्यासीके भाषणको सुन रहा हूँ तबसे मुझे अपना वह समझना भ्रमसे भरा हुआ प्रतीत होने लगा है, अधिक क्या कहूँ जब उन महात्मा संन्यासी जीके मुखसे मोतीसे स्वच्छ वाक्य निकलते हैं उस समय चित्तपर वैराग्य ही उत्पन्न होता चलाजाता है, ऐसी इच्छा होती है कि सब झगडोंको छोड कर इनका शिष्य बन इन हीके साथ रहूँ।

यज्ञदत्त–तब तो तुम्हारे इस कहनेसे स्पष्ट यही प्रतीत होता है कि मण्डनमिश्रका ही पक्ष गिरता हुआ है ।

ब्रह्मानन्द–मेरी समझमें तो परिणाम यही होगा मैंने खूब ध्यान देकर देखा है, मण्डनमिश्रके कंठमेंकी पुष्पमाला कुछ २

कुम्हलातीसी जाती है. कल सायंकाल तो वह बहुत कुम्हलाई हुई प्रतीत होने लगी थी, मैं निश्चयरूपसे कहता हूँ कि प्रायः आज ही शास्त्रार्थ समाप्त होजायगा, क्योंकि मण्डनमिश्रके कंठमेंकी पुष्पमाला आजसे अधिक निभती नहीं प्रतीत होती ।

यज्ञदत्त तब तो आज मैं भी अवश्य आऊँगा, क्योंकि आजतकका आनन्द तो दुर्दैववश हाथसे गया ही ।

ब्रह्मानन्द–चलो चलो तो शीघ्रता करो, अब अधिक देर नहीं है, वह देखो सब पंडितोंकी टिकलियेंकी टिकलियें चली जारही है और शास्त्रार्थ आरम्भ होनेका घण्टाभी बजने लगा वह देखो प्रातःकालके स्नान संध्या आदि विधिसे निबट कर प्रभातकालके सूर्यसे दमक रहे हैं जिनके आगे पीछे सहस्रों पंडितोंकी भीड़ है और जिनके कंठमेंकी पुष्पमाला सन्निपातहुए रोगीकी नाड़ीकी समान कुछ एक चमक रही है ऐसे मण्डनमिश्रजी शिवमंदिरकी ओरको जारहे हैं इस कारण अब हमको भी चलनेमें देरी करना ठीक नहीं है,

(ऐसा कहकर दोनों झपटे हुए जाते हैं)

दशम दृश्य

स्थान शिवालय ।

शिष्यों सहित श्रीशंकराचार्यजी आकर बैठते हैं फिर अनेक पंडितों के साथ मण्डनमिश्र भी अपने स्थान पर आकर बैठते हैं ।

शंकराचार्य–मण्डनमिश्र ! मेरा और तुम्हारा शास्त्रार्थ छः दिनसे बराबर चलरहा है; आज सातवाँ दिन है, तुमने जो जो शंका करीं, उन सबको ही मैंने दूर करदिया, फिर भी तुम हठ करके अपने मतको नहीं छोड़ते हो यह क्या बात है? अच्छा और भी तुम्हारे जो प्रश्न हों उनको कहकर अपने मनकी निकाललो ।

मण्डनमिश्र–हे संन्यासी ! तुम यह सिद्ध करते हो कि जीव और ईश्वरमें अभेद है, फिर संसारमें कितने ही जीव सुखी

और कितने ही दुःखी देखनेमें आते हैं, यह भेद क्यों है ?

शंकराचार्य-बहुत अच्छा प्रश्न किया, इसका तत्त्व भी तुम्हें बताता हूँ सुनो-अनिर्वाच्य अनूपम आत्माकी तुलना (समता) तो किसीसे कीही नहीं जासकती,क्योंकि-आत्मस्वरूप आकाश की समान व्याप्त है तथापि घटाकाश (घडेके भीतरका आकाश) जलाकाश (जलमेंका आकाश) और महाकाश (सब स्थानमें व्याप्त आकाश), यह मानो भिन्न २ हैं ऐसे प्रतीत होते हैं, घट बुद्धिसे घटमेंका आकाश स्वतन्त्रसा प्रतीत होता है, तैसे ही और भी परन्तु उस घटके फूटते ही वह आकाश कहाँ चला जाता है ?, इसके सिवाय घटके होनेपर तो घटाकाश निराला होता है, क्योंकि-घटके व्यवधानसे उसकी प्रतीति होती है परंतु उस आकाशमें घटाकाश जलाकाश होनेसे क्या कोई विकार आता है ? कुछ भी विकार नहीं आता तैसे ही परमेश्वरके स्वरूपका क्रम है। अब कोई जीव सुखी और दुःखी क्यों हैं ? यह जो तुम्हारा प्रश्न है इसका भी उत्तर सुनो यह सुख दुःख आदि भेद उस निरञ्जन परमात्माके विषैं हैं ही नहीं, मायासे ढकेहुए जीवका यह भ्रम है। देखो-बिल्लौर पत्थर स्वभावसे स्वच्छ सफेद होता है, उसीको लाल कपडेपर रखदो तो वह लाल २ दीखने लगता है नीले वस्त्रपर रखदो तो नीला २ दीखने लगता है परन्तु वास्तवमें उस पत्थरके श्वेतवर्णमें कुछ विकार नहीं होता है, तैसे ही सुख और दुःख यह किसी रङ्गकी समान हैं और उस बिल्लौरकी समान स्वच्छ आत्मापर ढकेहुए हैं इस कारण मूढपुरुषोंको वह स्वच्छआत्मा सुख दुःख वाला दीखने लगता है, वास्तवमें सुख दुःखरूप विकार आत्मामें जराभी नहीं हैं, किन्तु सुख दुःख आदि बुद्धिके धर्म हैं।

मण्डनमिश्र-अच्छा तो तुम यह जो कहते हो कि-जीवकी

मुक्ति होती है, वह कैसे प्राप्त होती है और मुक्तिका लक्षण क्या है ?

शङ्कराचार्य–यह सब जीव वासनारूप सूत्रमें गुथे हुये जन्म मरण आदि उपाधियोंका अनुभव कर रहे हैं, उस वासनाका जड़मूलसे नष्ट होना ही मुक्ति कहलाती है।

मण्डनमिश्र—शंकराचार्य! इस विषयमें तो मैं तुमको जीते लेता हूँ, अरे भाई! जब यह कहते हो कि–वासनाके नष्ट होने पर मुक्ति मिलती है, तब तो निद्राके समय भी वासना नष्ट होजाती है, उस समय जीवकी मुक्ति क्यों नहीं होती? उसको फिर संसारचक्रमें क्यों पड़ना पड़ता है?

शंकराचार्य—धन्य! मण्डनमिश्र धन्य!! बड़ा अच्छा प्रश्न किया अच्छा तो सुन–वासना जड़मूलसे नष्ट होनी चाहिये, यह बात मैंने कही थी, यह तो तुम्हारे ध्यानमें होगा ही! वासना नष्ट हुये बिना निद्रा तो आवेगी ही नहीं यह तो सिद्धान्त है, परन्तु उस समय समूल नष्ट नहीं होती है, किन्तु जैसे बिनौलेमें वस्त्र गुप्तरूपसे होता है तैसे ही यह सब जगत् उस समय वासनामें लीन होजाता है, फिर वह वासना अज्ञानमें गढे हुए जीवके समीप, बिनौलेकी समान बीजरूप होकर लीन होजाती है, यदि कहो कि–बिनौलेमें वस्त्र कैसे रहता है तो सुनो–बिनौलेको बोने पर उसमें अंकुर निकलता है, तिससे वृक्ष होकर फूल आते हैं, फिर फल होकर उसमेंसे कपास निकलती है फिर उसके रुई–सूत आदि होकर वस्त्र बनते हैं अब कहो कि–उस वस्त्रका अधिष्ठान बिनौला रहा या नहीं? ऐसे ही यह सब जगत् वासनामें रहता है फिर इस जीवकी जाग्रत् अवस्था होनेपर उस वासनामें अंकुर फूटकर यह विश्व भासने लगता है। अब यदि उन ही बिनौलोंको भून लिया जाय तो उनमेंसे कभी भी अंकुर नहीं निकलेंगे, तैसे उस वासनाको ज्ञानाग्निसे भून देनेपर यह संसार

रूपी अंकुर उसमेंसे कदापि नहीं निकलेगा और मिथ्या मान नष्ट होजायगा इसीका नाम मुक्ति है।

मण्डनमिश्र-हे संन्यासीजी! उस मुक्तिके अनुभवका आनंद कैसा होता है?

शंकराचार्य-अजी मण्डनमिश्र! मुक्तिमें जो अखण्ड आनंद का अनुभव होता है वही है।

मण्डनमिश्र-वह आनन्दका क्या विषयोंके आनन्दसे अलग कोई और प्रकारका है?

शंकराचार्य—नहीं नहीं यह विषयोंके आनन्द भी सब उसी आनन्दमेंका बहुत थोड़ा भाग है, आत्मस्वरूपके अनुभवके बिना तो आनन्द हो ही नहीं सकता।

मंडनमिश्र—तो फिर विषयोंके भोगसे जो आनन्द होते हैं वह झूठे हैं क्या?

शंकराचार्य अजी! यह भी ब्रह्मानुभवरूप आनन्द ही हैं, आत्मस्वरूपके अनुभवके बिना तो आनन्द हो ही नहीं सकता, ऐसा मैंने अभी तो कहा था, उसको मैं सिद्ध करता हूँ सुनो जगत्‌की मूल वासनाके धर्म यह हैं-वासना यह चाहती है कि-जीवके पाससे निकल कर किसी विषय पर झपट्टा लगाऊँ और उस विषयको पाकर फिर पीछेको लौटूँ और फिर दूसरे विषयकी ओरको दौड़ूँ, इस प्रकार वासनाके अनेकों चक्र चलते हैं, इसीको अन्तःकरणकी वृत्ति कहते हैं, अब उदाहरणके लिये एक अन्न विषयको ले लीजिये, वासना जीवसे निकली और अन्न पर चली, तहाँ उसको अन्न मिला, तब वह पीछेको लौटी उस समय पीछेको लौटनेमें उस वासनाकी और आत्माकी सन्मुखता होती है और ब्रह्मका प्रतिबिम्ब उस वासनामें पड़ता है उसके साथ ही जीवको आनन्द होता है, परन्तु यह मूढ उसको भी विषयानन्द ही समझता हुआ तिस ब्रह्मानन्दको भूला रहता

है, तदनन्तर फिर वासना अपने व्यापारमें लग जाती है, इस प्रकार विषयानन्द और आत्मानन्दका भेद है, परन्तु योगी विषयानन्दको भी ब्रह्मानन्द ही जानता है, ब्रह्मानन्दके बिना-आनन्द है ही नहीं, क्या मेरा यह कहना असत्य है ?

इतने ही में मण्डनमिश्रकी समाधि लगती है इस कारण वह कुछ उत्तर नहीं देसकते हैं और कंठमेंकी माला कुम्हलाती है तब सब लोग 'जीत लिया २, वाह वाह' ऐसा कहकर तालियें बजाते हैं और श्रीशंकराचार्यजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा होती है।

शंकराचार्य-(आनन्दसे) शिष्यो! देखो इससे उत्तर न होसका आनन्दका स्वरूप सुनाते ही समाधि लग गई।

पद्मपाद—महाराज! क्या अब भी हारजानेमें कुछ सन्देह होसकता है ? मण्डनमिश्रके कण्ठमेंकी पुष्पमालाको तो देखिये, कैसी मुरझागई है।

शंकराचार्य—इनको समाधिसे जगाकर सचेत करना चहिये (इतना कह मण्डनमिश्रको झकझोरके सावधान करते हैं) क्यों मण्डनमिश्र! यह क्या दशा है ? ऐसे मौन क्यों बैठे हो ? और कोई प्रश्न करो, इस तुम्हारे चुप साधने पर यह तुम्हारे साथ के ही पण्डित हास्य करते हैं।

तदनन्तर मण्डनमिश्र और सब पण्डित श्रीशंकराचार्यजी के सामने साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं

शंकराचार्य-कहो, कहो! चित्तमें कोई शंका शेष न रक्खो, क्यों कि-जन्म मरणका मूल कारण शंका ही है।

मण्डनमिश्र-सुनिये सद्गुरो! सकल वेदान्तका वर्णन करने वाले भगवान् वेदव्यासजी हैं और कर्मकाण्डका उपदेश देनेवाले उनहीके शिष्य जैमिनिजी हैं, सो अपने गुरुके प्रतिकूल यह कर्ममार्ग जैमिनिजीने क्यों चलाया और अपने मतके विरुद्ध मत चलाने वाले शिष्यसे जैसे गुरुका मन खट्टा होजाता है तैसे श्रीवेदव्यासजीकी प्रीति जैमिनिजीके ऊपरसे क्यों नहीं हटी ?

अब तक जैमिनिजी उनके प्यारे कैसे बने हुए हैं ? मुझको यह बड़ा सन्देह है ।

शंकराचार्य-अजी मण्डनमिश्र ! आज तुमने जो जो शंका करी वह बहुत ही अच्छी हैं, अच्छा अब इस शंकाका भी उत्तर देता हूँ सुनो जैमिनिजीका मत गुरु व्यासजीके प्रतिकूल नहीं है किन्तु अनुकूल ही है. क्यों कि—कर्मके बिना चित्तशुद्धि नहीं होसकती और चित्तशुद्धिके बिना आत्मविचारमें श्रद्धा ही नहीं होसकती, इस कारण जैसे छत्तपर चढ़नेमें सरलता होनेके लिये सीढियें बनाते हैं तैसे ही कर्मगार्गको ज्ञानमार्गकी सीढी समझो इसके सिवाय यह बात भी है कि—यदि कर्ममार्ग न होता तो मूढ पुरुषोंकी व्यर्थ ही अधोगति होती, इस कारण जैमिनिमुनि ने सब सांसारिक जीवों पर कृपा करनेके लिये यह कर्ममार्ग चलाया है, अब तुम आप ही विचार देखो कि-जैमिनिमुनि का यह मत गुरुके प्रतिकूल है या अनुकूल ? और इसका प्रमाण तो तुम अभी पाचुके, क्यों कि-अबतक कर्म करनेसे तुम्हारा हृदय शुद्ध हो गया था तब ही तो आनन्दका यथार्थ वर्णन होते ही तुम्हारी समाधि लगगई ।

मण्डनमिश्र-(हाथ जोड़े हुए ऊपरको नेत्र करके) हे जैमिनि जी ! इस मेरी शंकाका निवारण एक बार आप प्रत्यक्ष आकर कीजिये ॥

(तदनन्तर परदेके भीतर शब्द होता हैकि-अरे मण्डनमिश्र ! शङ्कराचार्यजी जो कुछ कहते हैं वह ठीक है, अन्तःकरण की शुद्धि होकर ज्ञानमार्गका अधिकारी होनेके लिए ही मैंने कर्ममार्ग चलाया है)

मण्डनमिश्र-(शंकराचार्यजीके चरण पकड़ कर) महाराज! आप धन्य हैं और आपके चरणोंकी कृपासे अब मैं भी धन्य होगया, अबतक मैं मायाके जञ्जालमें पड़कर भ्रान्त बुद्धिसे वृथा

ही कल्पनाएँ कर रहा था, परन्तु आपने पधार कर उचित उपदेश दे मेरा उद्धार कर दिया, यह मेरा थोड़ा सौभाग्य नहीं है, हे गुरो ! अब विलम्ब न करके शीघ्र ही मुझको संन्यासी बना लीजिये जिससे कि—मैं इस संसारके जञ्जालसे छूटजाऊँ, क्योंकि अब मुझको यह सब असार दीखता है मैंने मनमें पक्का संकल्प करलिया अब मुझको न घरका ध्यान है, न धनकी चिंता है, और स्त्रीका मुख देखनेकी भी इच्छा नहीं है; अब आप देर न करिये, कोई है रे ! नाईको तो बुलालो ॥

(इतना सुनकर शिष्यों सहित श्रीशङ्कराचार्यजी बड़े आनन्द के साथ नारायण नारायण शब्दकी ध्वनि करते हैं और इतने ही में मण्डनमिश्रकी स्त्री सरस्वती आती हैं)

सरस्वती—(पतिकी ओरको देखकर) हर हर, हे हृदयनाथ! आज आप हारगए क्या ? अच्छा (शंकराचार्यजीकी ओरको) संन्यासीजी ! अब आगेके लिये क्या होरहा है

शंकराचार्य—सरस्वती ! तेरे पतिको मैंने जीत लिया सो अब जैसी प्रतिज्ञा होगई थी, उसके अनुसार तेरे पतिको संन्यासी बनाता हूँ; इस विषयमें तू भी इनको आज्ञा दे, क्योंकि तेरे ऋणसे भी यह मुक्त होचुके हैं ॥

सरस्वती—वाह संन्यासीजी वाह ! मेरे पतिको पूरा २ बिना जीते हुए ही संन्यास दिये देते हो ॥

शंकराचार्य—जीता कैसे नहीं ! इस बातको अपने पतिसे ही बूझ ले, और तूने मेरे और इनके कंठमें जो एक २ माला डाल दी थी, सो इनके कंठमेंकी मालाको भी देख ले कैसी मुरझागई और मेरे कंठमेंकी माला देख जैसीकी तैसी बनी हुई हैं, इसपर भी क्या तुझको इनके हारनेमें कुछ सन्देह है ?

सरस्वती—अजी संन्यासीजी ! कहाँ भूले हो ! क्या तुम यह

नहीं जानते कि-स्त्री पति दोनोंको मिलाकर शास्त्रने एक मूर्ति बताई है, फिर मुझको बिना जीते मेरे पतिको पूरा २ कैसे जीतसकते हो ?, अभी तो तुमने आधे भागको ही जीता है, इस लिये चाहें तो आप आधे शरीरको अभी संन्यास देदीजिये, परन्तु बाएँ अंगको हाथ नहीं लगाने दूँगी, पहिले मुझे जीत लो, फिर जो चाहे सो करना ।

शंकराचार्य-सरस्वती ! जैसा तू कहरही है, ऐसा करना तो हमारे संन्यास आश्रमके प्रतिकूल है, क्योंकि संन्यासियोंको तो स्त्रियोंसे बात चीत करने तकका निषेध है ।

सरस्वती-अजी ! यह तुम कैसी अज्ञानियोंकेसी बातें कररहे हो ! अद्वैतवादमें तो संन्यासी चाहे जिसके साथ बात करसकता है, इसका शास्त्रने कब निषेध किया है ? पहिले याज्ञवल्क्यजीने गार्गीके साथ प्रश्नोत्तर किये ही हैं, ऐसेही अनेकों दृष्टांत मिल-जायँगे, इसलिये मैं स्पष्ट रूपसे कहती हूँ कि जबतक मुझको न जीत लोगे तबतक मैं अपने पतिको संन्यास न देनेदूँगी ॥

शंकराचार्य-(मनमें) यह तो बड़ा उलझट्टा पड़ा यदि इस से शास्त्रार्थ नहीं करता हूँ तो जीता हुआ मण्डनमिश्र हाथसे निकला जाता है तथा मेरे काममें गडबडी पडती है और यदि शास्त्रार्थ करता हूँ तो लौकिकमें विरुद्ध होगा (विचार कर) अच्छा चाहे कुछ हो, शास्त्रार्थ तो इसके साथ करूँगा ही मंडन-मिश्रको शिष्य किये बिना कभी भी नहीं छोड़ूँगा (प्रकाश रूपसे) बहुत अच्छा सरस्वती ! तेरे चित्तमें शास्त्रार्थ करनेकी इच्छा हो तो सामने आकर बैठ और जो कुछ प्रश्न करने हों सो कर ॥

सरस्वती-(सन्मुख आकर बैठ कर) अजी संन्यासीजी तुम्हारे मतमें यह संसार मिथ्या है, परन्तु यह बात समझमें

नहीं आती, सो यह असत्य किस प्रकार है? इसको दृष्टांत देकर समझाइये ॥

शंकराचार्य-संसार सत्य कैसे है इस बातको पहिले तू ही सिद्ध कर तब मैं उसका खण्डन करूँगा ॥

सरस्वती-अजी! सत्य होनेमें तो और किन्ही कारणोंकी आवश्यकता ही नहीं है, जब कि यह सब समय एकसा दीखता है तब और कौनसा प्रमाण चाहिये?

शङ्कराचार्य-सब कालमें एकसा दीखने वाला कहती है यही ठीक नहीं है, यदि सबकालमें एकसा दीखता तो इसको मिथ्या कौन कहसकता था?

सरस्वती-तो तुम्हारे मतमें, जगत्‌का अनुभव सदा नहीं होता है? भला सिद्ध करो यह कैसे होसकता है?

शङ्कराचार्य-तू जब सोती है तब तुझको कभी २ स्वप्न भी दीखते ही होंगे! उस समय क्या तुझको इस जगत्‌का कुछ अनुभव होता है? और जब तू सुषुप्ति अवस्थामें होती है उस समय तो वह स्वप्नका भी जगत् नहीं होता है और यह जगत् भी नहीं होता है और जगजाने पर भी स्वप्नके जगत्‌का पता नहीं होता है, इस प्रकार एक समयके जगत्‌का दूसरे समयमें जब अभाव होता है तब फिर जगत्‌की सत्यता कहाँ रही?, अज्ञान वश रस्सीमें सर्पकी प्रतीतिकी समान ब्रह्मके स्वरूप पर इस जगत्‌का भान होरहा है, इस प्रकार जगत् धोखे टट्टीके सिवाय और कुछ नहीं है।

सरस्वती-(मनमें) यह तो शास्त्रार्थमें मुझे चुप ही करदेंगे जिसने मेरे पतिको जीत लिया वह मेरे जीतनेमें भला काहेको आने लगा है? आखिर तो मैं अबला ही हूँ, अच्छा अब कुछ कपट करके इनके छक्के छुटाऊँ (प्रकट) अच्छा संन्यासीजी!

तुम्हारे अद्वैत शास्त्रमें जिन छः रिपुओंको जीतना कहा है, वह कौनसे हैं, उनके नाम तो बताओ ?

शंकराचार्य-(हँसकर) सरस्वती ! यह तूने क्या प्रश्न किया! अच्छा सुन -१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मत्सर, इन छःको अपने वशमें करना चाहिये, तिसमें काम तो बड़ा ही कठिन है परन्तु योगीके सामने उस कामदेवकी भी कुछ नहीं चलती है ।

सरस्वती-अजी संन्यासीजी ! सुनो तो सही-

पृच्छामि वद कामस्य कला भिक्षो किमात्मिका ।
कियन्त्यश्च किमाधारास्तथा कामस्य का स्थितिः ॥
पूर्वपक्षे परं नार्या नरे तिष्ठति वा कथम्
एतेषामुत्तरं देहि सम्विचार्य यतीश्वर ॥

उस कामकी कलाओंका क्या स्वरूप है ?, और वह कितनी हैं ? तथा किस आधारसे रहती हैं मनुष्यमें कामकी स्थिति किस प्रकार होती है ?, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें, मनुष्य और स्त्रीके विषें वह कामकी कला कहाँ २ कैसे २ रहती है ? इन मेरे प्रश्नोंके उत्तर ठीक २ विचारकर दो ।

शंकराचार्य-(विचारमें पडकर मौन रहजाते हैं)

सरस्वती-क्यों महाराज ! चुप क्यों साधली ? क्या मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं देसकते ? तब तो तुमको हार माननी पडेगी इतनेसे प्रश्नका उत्तर नहीं देसकते ? फिर तुम सर्वज्ञ कैसे हो ?

शंकराचार्य-सरस्वती ! इस प्रश्नका उत्तर मैं तुझको एक महीनेके भीतर दूँगा, तबतककी मुझको अवधि दो ॥

सरस्वती-बहुत अच्छा यदि एक महीनेके भीतर उत्तर नहीं दोगे तो हारे समझे जाओगे, एक महीनेके लिये तो मैंने अपने पतिको संन्यासरूप अकाल मृत्युके मुखसे बचाही लिया (पतिसे) महाराज ! घरको चलिये ।

(तदनन्तर मण्डनमिश्र सरस्वती और सब पण्डित जाते हैं)

पद्मपाद-(शंकराचार्यजीसे) महाराज ! आपने यह क्या किया क्या कहा जाय ? आपने तो हाथमें आये हुए मण्डनमिश्रको खोदिया !

शंकराचार्य-अरे भाई ! सरस्वतीने तो प्रश्न ही ऐसा वेढब किया कि-मैं जिसका उत्तर ही नहीं देसका ।

पद्मपाद-गुरुजी ! आप कौनसी बातको नहीं जानते हैं ? कामशास्त्रकी ही बात थी तो क्या था ? आप सर्वेश्वर हैं, उत्तर देही देते तो उसमें कौन हानि थी ।

शंकराचार्य-भाई ! उसका उत्तर देना ठीक ही नहीं था, क्यों कि-यदि मैं उस प्रश्नका उत्तर देता तो वह यह कहती कि-तुम ब्रह्मचर्य आश्रमसे एक साथ संन्यासी होगये थे, फिर कामशास्त्र कब सीखा ? इस लिये तुम भ्रष्ट हो ।

पद्मपाद-अच्छा ! आपने जो एक महीनेकी अवधि ली है,उस में अब क्या करोगे ।

शंकराचार्य-बात यह है कि-इस समय अमरक नामक राजा का मरण हुआ है और उसकी लाश दाह करनेके लिये स्मशानमें लाई गई है, यह बात मैंने अभी योगदृष्टिसे देखी है, सो मैं योगबलसे उसके मृत शरीरमें घुस कर उसके शरीरसे उस की सैंकडों स्त्रियोंसे विलास करता हुआ सब कामशास्त्रको जानलूँगा और एक मासके आनन्तर इस ही अपने शरीरमें आजाऊँगा, तुम इतना काम करना कि—इस गुफामें बैठे हुए बड़ी सावधानीके साथ इस मेरी शरीरकी रक्षा करते रहना ॥

पद्मपाद-महाराज ? ऐसा न करिये, इससे बडा अनर्थ हो जायगा, मण्डनमिश्र मिलो या न मिलो, इसकी कुछ चिन्ता नहीं है, क्यों कि—हमने सुना है कि—पहिले समयमें एक योगी थे वह भी इसी प्रकार राजाके शरीरमें प्रवेश करके स्त्रीलम्पट हो अपने स्वरूपको भूल गए थे, तब उनका एक योगी शिष्य लौटा

कर लाया, सो हमसे आपके वियोगका संकट नहीं सहा जायगा

शंकराचार्य-अरे भइया! यह तुम्हारा क्या ध्यान है? क्या मैं विषयोंमें फँस कर अपने कर्त्तव्यको भूल जाऊँगा मुझमें ऐसा अज्ञान होनेका तुम कुछ सन्देह न करो, सावधानीके साथ धैर्यसे मेरे इस शरीरकी रक्षा करते रहो, मैं बहुतही शीघ्र लौट कर आऊँगा, अब जानेको देर होती है, क्योंकि—उस राजा का शरीर अब चिता पर रक्खा ही जाने वाला है (इतना कह कर प्राणायामके द्वारा शरीरको छोड़ते हैं, इसी समय शरीर शिथिल हो भूमि पर लम्बा२ पड़ता है, और सब शिष्य नारायण नारायण करते हुए उस शरीरको उठाकर लेजाते हैं) ॥

इति मण्डनविजय परकाया-प्रवेश नामक तृतीय अंक समाप्त।

—o—

अथ चतुर्थ अंक

प्रथमदृश्य

(अमरक राजाकी नगरीमेंका राजदरबार)

(तदनन्तर अमरक राजाका सुविचार नाम वाला मंत्री और विचक्षण नामक न्यायाधीश आते हैं)

सुविचार—(आसन पर बैठ कर) आइये न्यायाधीशजी! आपसे कुछ गुप्त बातें करनी हैं, इसी कारण बुलवाया था।

विचक्षण-मन्त्रीजी! मैं भी आपका सिपाही पहुँते ही हाथ का काम जैसाका तैसा छोड कर चला आरहा हूँ, जो कुछ विचार करना हो करिये, यहां कोई तीसरा तो है ही नहीं।

सुविचार—कौन है रे उधर! (इतना सुनते ही द्वारपाल आता है) ॥

द्वारपाल-(प्रणाम करके) महाराज मैं सेवक हाजिर हूँ, क्या आज्ञा है?

सुविचार-द्वारपाल! खूब सावधानीके साथ पहरा देना, हमारी आज्ञा लिये बिना किसीको भीतर न आने देना।

द्वारपाल-बहुत अच्छा महाराज! जो आज्ञा।

(ऐसा कहकर फिर प्रणाम करता हुआ बाहरको जाता है)

सुविचार-न्यायाधीशजी! महाराजका दुसराकर जीवित होना तो आपने सुना ही है?

विचक्षण-सुनना क्या वह सब बात मेरी आँखोंकी देखी हुई है! ऐसा चमत्कार मैंने तो अपनी उमर भरमें कभी देखा नहीं भला उनमें क्या कुछ बाकी रहा था? बडे २ राजवैद्योंने हाथ सकोड लिया था, तब ही तो प्राणहीन समझ वह श्मशानको लेगये थे! परन्तु जैसे कोई सोकर उठ बैठता है उसी प्रकार महाराज एकायकी उठ बैठे, और यह भी तो देखो-जिस रोग से महाराजको यहाँ तक कष्ट हुआ था वह रोग भी अब नहीं रहा, न जाने क्या भेद है, हमारी तो समझ ही काम नहीं देती ऐसी अघटित घटना परमेश्वरकी इच्छासे ही हुई है, इस राजधानीका यह प्रारब्ध ही समझना चाहिये।

सुविचार—इस विषयमें मुझे जरासा सन्देह है, क्यों कि—महाराजकी व्याधि भी जीवित होनेके साथ ही दूर होगई इतना ही नहीं किन्तु महाराजका स्वभाव भी पलट गया है, इससे मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि-हमारे महाराज तो इस संसारसे गये सो गये ही, यह कोई और ही इस शरीरमें आगया है।

विचक्षण-तुम जाने क्या कह रहे हो, यह बात मेरी समझमें आई नहीं, तुमने क्या समझा है सो साफ साफ कहो?

सुविचार-देखो हमारे महाराज तो हस्ताक्षर करनेके सिवाय और एक अक्षर भी नहीं लिख सकते थे और अब तो यह न्यायका सब कारोबार अपने आप ही लिख डालते हैं, कार्यमें कितनी चतुराई है! सब बातों पर कितना ध्यान है! कौन

अधिकारी कैसा कार्य करता है, सो बराबर देखते हैं प्रजाके ऊपर कितनी सूक्ष्म दृष्टि है, कहाँ तक कहूँ, इनमें जितने गुण हैं, हमारे महाराज में तो इन गुणोंका पता भी नहीं था, न जाने एक साथ कहाँसे आगये ?

विचक्षण-भाई ! यह शंका तो कुछ नहीं है ! क्यों कि-जब परमेश्वरकी देन हो तो किस बातकी कमी रह सकती है ? जिसने दुसराकर जीवनदान दिया वह अलौकिक गुण भी दे सकता है।

सुविचार-छिः छिः ऐसा कहना तुम्हारे विचक्षण नामको बट्टा लगाता है, भाई ! इसमें कुछ और ही भेद है।

विचक्षण-अच्छा, क्या भेद है ? बताओ तो सही इस विषय में बुद्धि काम नहीं देती, एक बार यह सन्देह तो मुझको भी हुआ था कि-जिस मुकदमेका फैसला मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार न्यायानुकूल कर दिया था, उसकी अपील जब महाराजके यहाँ हुई तब उन्होंने उसकी खूब ही छानबीनकी और अन्तमें फैसला भी बडी ही योग्यताके साथ किया, उसको देखकर मैं तो चकित होगया, और महाराजकी पहिले समयकी योग्यतासे तुलनाकी तो पृथ्वी आकाशकासा अन्तर प्रतीत हुआ, उस समय भी मैंने परमेश्वरकी देन समझकर ही सन्तोष करलिया था

सुविचार-मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि-किसी योगीने राजयोग करनेके लिये अपने शरीरको कहीं रखकर इस राज-शरीरमें प्रवेश किया है, क्यों तुम्हारे ध्यानमें भी कुछ आता है

विचक्षण-इसका निश्चय कैसे हो ? और योगी पुरुष तो निरीह रहते हैं उनको इस खटखटेमें क्या सुख मिल सकता है ?

सुविचार-मैं यह बात केवल अपनी बुद्धिसे ही कहता हूँ, और यह बात एक दिन मैंने राजपुरोहितसे भी कही थी तब उन्होंने बहुत कुछ सोच विचार कर उत्तर दिया कि-यह कोई

महायोगी है और ऐसा आजतक अनेकों स्थान पर हुआ भी है क्योंकि योगी पुरुष राजयोग साधनेको ऐसा किया करते हैं।

विचक्षण–तब तो परमेश्वरकी कृपासे यदि यही सदा हमारे राजा रहें तो अच्छा हो!

सुविचार–मेरी भी ऐसी ही इच्छा है और इसके लिये मैंने कुछ प्रबन्ध भी करना आरम्भ करदिया है।

विचक्षण–यही योगी बहुत दिनोंतक इस राजशरीरमें रहें, इस विषयमें कोई युक्ति तुमने गुरुजीसे भी बूझी थी ?

सुविचार–हाँ बूझा था, उन्होंने भी मुझे युक्ति बताई और वह ठीक भी मालूम हुई!

विचक्षण–मुझे भी तो बताओ, उन्होंने क्या सम्मति दी ?

सुविचार–उन्होंने कहा कि–बहुतसे राजदूत सारी पृथ्वीपर ढूँढनेको भेजो, उनको जहाँ कहीं कोई मृतक शरीर मिले उसको अग्नि भस्म करदोदें, ऐसा करनेसे सहजमें ही उस योगीका शरीर नष्ट होजायगा तब वह आप ही इस राजशरीरमें चिर-काल तक रहेंगे।

विचक्षण–वाह! वाह! यह युक्ति तो बहुत अच्छी है! फिर इसमें देरी क्या है? किन्ही विश्वासपात्र सेवकोंको शीघ्र ही इस कामके लिये भेजदेना चाहिये।

सुविचार–भेजता हूँ, परन्तु पहिले रानी साहबके महलमें जाकर भी कुछ सुराख लगा देखूँ, उनको भी इस विषयमें कुछ सन्देह हुआ है या नहीं, वहाँकी टोह लेकर फिर सब प्रबन्ध करूँगा।

विचक्षण–अच्छा तो सब वृत्तान्त तो आपने सुन ही लिया अब मैं जाता हूँ।

सुविचार–अच्छा तो चलिये मैं भी अब उधरको जाता हूँ।

(ऐसा कहकर दोनों जाते हैं)

द्वितीय दृश्य

(राजाका आनन्दकुंज बाग)

(वसन्ती और माधवी नामक राजमहलकी दो दासियोंका प्रवेश)

माधवी-सखि वसन्ती ! जैसे तरुणाईमें भरी हुई मतवाली हथिनी आ आसपासके हर्क्षोंका कुछ ध्यान न करके उन्मत्त हुई फिरती है, तैसे ही तू यहाँ खड़ी हुई मेरी ओरको न देखकर अपनी छाती पर सुवर्णके कलशोंकी समान दोनों स्तनोंको निहारती किसकी ओरको जारही है ?

वसन्ती-अरे ! मेरी प्यारी सखी वसंती है क्या ? सखी ! तू जानती ही है जब कहीं मन जापडता है तो फिर समीपमें कोई भी पदार्थ हो वह नहीं दीखता, इसकी मुझको क्षमा दे (ऐसा कहकर उसका हाथ पकडती है)

माधवी-सखि वसंती ! जिसने तेरे मनको भी विचलित कर दिया है, ऐसा भाग्यवान् पुरुष इस नगरीमें कौन उत्पन्न होगया है ?

वसन्ती-(लज्जित होकर) सखि ! तू जैसा समझ रही है क्या अब मेरी अवस्था इस योग्य है ? न जाने तू ऐसी बातें क्यों कररही है ?

माधवी-ऐसी तो बूढी भी नहीं होगई है ! फिर जिस मंदिर में निरन्तर शृंगाररूप मेघकी वर्षा होती रहती है और जिस मन्दिरमें कामदेवकी समान सुन्दर महाराजाधिराजकी दर्शनीयमूर्त्ति, पूर्ण खिले हुए कमलपर भौंरेकी समान, जिनपर मोहित रहती है, उन महारानी मदनमञ्जरीके मंदिरमें तू रहती है, फिर मैं कैसे समझलूँ कि तेरा चित्त ठिकाने रहता होगा ? अच्छा ! यदि ऐसा नहीं है तो यह हाव भाव कटाक्ष आदिसे शरीरकी सजावट काहेके लिये होती है ?

वसंती-एंः भाड़में जाओ मुझसे तो ऐसी बातें ना आतीं। तेरे जीमें आवे सो समझ; अब यह तो बता तू कहाँ जारही है?

माधवी-बता तो दूँगी, परन्तु तू इस बातकी प्रतिज्ञाकर कि किसीसे कहूँगी नहीं!

वसंती-मैं जानूँ अभी तू मेरे स्वभावको नहीं पहिचानती है?, अरी यद्यपि मैं तू दोनों सौतियाडाह रखने वाली दो रानियोंकी दासी हैं तथापि तेरे साथ मैं जैसा व्यवहार रखती हूँ क्या उसको नहीं जानती है?

माधवी-सखी! इसी कारण तो कहती हूँ, सुन कल्ह रात महाराजसे हमारी रानी साहब रूठ गई थीं, उस समय जैसे तैसे 'अब मैं कभी मदनमञ्जरीका मुख भी नहीं देखूँगा,' यह प्रतिज्ञा होनेपर महाराजकी उनके साथ एक शय्या हुई थी, परन्तु आज फिर महारानी साहबको समाचार मिला है कि इस समय महाराज आनन्द कुञ्जबागमेंके जल मंदिरमें महारानी मदनमञ्जरीके साथ हैं, 'यह बात ठीक है या नहीं?' इसका पता लगानेको महारानी साहबकी भेजी हुई मैं गुप्तरूपसे आई हूँ, समझगई?

वसन्ती-सखि! जैसे कुम्हलाकर सूखी हुई कमलनी पर भौंरा बैठता है तैसे ही महाराज न जाने उस बूढी स्त्रीके प्रेममें कैसे फँसगये? मुझे तो बड़ा आश्चर्य है?

माधवी-सखि! चित्तकी प्रबलताके बिना भला कुटकीका सेवन कौन करेगा? ऐसी गाँठ पड़जानेका कोई और ही कारण है

वसन्ती-वह कौनसा कारण है, बता तो सही!

माधवी-कल्ह महारानी साहबने एक व्रतका उद्यापन किया था; उसकी सांगता करनेके लिये महाराज जा फँसे थे, सो भोजन भी तहाँ ही हुआ था, फिर भला निकलकर कहाँ जा सकते थे इस कारण विवश होकर तहाँ ही रहना पड़ा।

वसन्ती-बहुतसी स्त्रियोंसे प्रेम रखना पुरुषको बड़ा ही कष्ट देता है, देख अब तू तहाँ जाकर यह कहेगी कि महाराज हमारी महारानीके साथ इस बागमें हैं तो वह बुढिया महाराजको नोच नोचकर खायगी।

माधवी-(हँसकर) तेरे इस कहनेसे तो निश्चय होगया कि महाराज यहाँ ही हैं! मेरा काम तो सिद्ध होगया, अब मैं जाती हूँ।

वसंती-सखि! बातोंमें मुझको कुछ भी ध्यान नहीं रहा और गुप्त बात मुखसे निकलगई, अब कृपा करके किसीको मेरा नाम न बताना नहीं तो मैं सदाको दो कौड़ीकी होजाऊँगी।

माधवी-नहीं ऐसा कभी नहीं होगा, अच्छा यह तो बता कि तू घबडाई हुई जा कहां रही है? और महाराज जब तुम्हारी महारानी साहिबा के साथ मिले तब क्या २ आनन्द हुआ?

वसन्ती-कल रातको जब आधीरात तक महाराज नहीं पहुँचे तब महारानी बहुत ही बिगडीं, और सब दासियोंको यह भेद जाननेके लिये कि महाराज कहाँ हैं भेजा, उस समय हमने बहुत खोजकी परन्तु कुछ पता नहीं लगा अंतको महाराज बडी महारानी साहबके भवनमें पधारे हैं, ऐसा पता लगाकर खबर देते ही हमारी महारानी ठुकराई हुई नागिनीकी समान लंबी २ सांससे लेकर पलँगपरसे नीचे पडरहीं और सब गहने उतार कर फेंकदिये।

माधवी-रानी साहबको जैसा क्रोध आया होगा उसको मैं अनुमान करसकती हूँ क्योंकि सब राजरानियोंमें एक वही तो अपनी सुन्दरतासे सत्यभामाको भी लज्जित करने वाली हैं अच्छा फिर क्या हुआ?

वसंती-फिर हम सब जनी घबडाकर महारानीके पास गईं परन्तु उन्होंने किसीकी एक न सुनी और कहने लगीं कि मैं तो

अब प्राण खोदूँगी और महाराजको अपना मुख नहीं दिखाऊँगी, उससमय मैंने अनेकों उतार चढ़ावकी बातें समझाईं तब कुछ२ शांति हुई, परन्तु नेत्रोंमेंकी अश्रुधारा तब भी बंद नहीं हुई इतने हीमें प्रातःकाल होगया, तब जैसे तैसे हमने पलँगपर लिटाया, इतने हीमें सरकार भी जागनेसे औंघाते हुएसे आकर पलँगपर बैठगये।

माधवी-महाराज बिचारोंको कहीं भी सुख नहीं, क्योंकि-कल रातभर वहाँ भी ऐसे ही दुर्दशा रही थी।

बसन्ती-जब बड़ी महारानीने बडी प्रीतिके साथ महाराजको रोका था तो फिर उनके यहाँ यही दशा क्यों हुई?

माधवी-यह तो ठीक है परन्तु जब दोनों शय्यापर बैठे तब महाराज बहुत दिनोंतक आये नहीं थे इस कारण महारानी रूठकर मौन होगईं।

बसंती-सखि! भला कबतक मौन रही होंगीं! बहुत समय के भूखे ब्राह्मणके आगे पंचपक्वानका थाल रखनेपर भला वह कबतक धीरज धरे बैठा २ देखता रहेगा? यही दशा क्या बडी महारानीकी नहीं हुई होगी?

माधवी-हमने भी पहिले ऐसा ही समझा था परन्तु कल तो बहुत ही खेंच हुई, ज्यों २ महाराज खुशामद करते थे त्यों २ महारानीका मान बढता जाता था, और जैसे नई बिवाहिता स्त्री प्रथम बार समागम होते समय पतिके हाथको छूतेही झटक देती है, बस तैसी ही दशा होने लगी तब हमको प्रतीत हुआ कि महारानी साहबकी तरुणाई मानो फिर लौट आई है।

बसंती-सखि ऐसा तमाशा कितने समयतक होता रहा।

माधवी-सखि! क्या कहूँ तू झूठ समझेगी प्रातःकाल तक यही झंझट रहा, महाराजने अपनी सब बुद्धि खरच करडाली परंतु व्यर्थ ही गई तब महाराजने खिन्न होकर एक श्लोक पढा

था वह इस समय मुझको याद नहीं रहा परंतु उसका भाव ध्यानमें है कहे तो सुनादूँ ?

वसन्ती हाँ हाँ सुना—

माधवी-सखि ! प्रातःकालके समय महाराजने खिन्न होकर जो श्लोक बोला था उसका भावार्थ यह है कि "हे कृशोदरि ! रात्रि कृश होगई परंतु तेरा मान कृश नहीं हुआ पूर्वकी दिशामें राग (लाल रंग) आगया परंतु तुझमें राग (प्रेम) उत्पन्न नहीं हुआ यह आकाश प्रसन्न (साफ) होगया परंतु तेरे मुख पर प्रसन्नता न आई यह पक्षी बोलने लगे परंतु तूने मौन नहीं छोड़ा, अब मैं क्या करूँ ?"

वसंती-हर हर, यहांतक नौबत आगई तब भी उस कठोर को दया नहीं आई !

माधवी-बस केवल मौन दूर होगया तब ही-"मदनमञ्जरी का मुख अब कभी नहीं देखूँगा" ऐसा बचन दो यह कहने लगीं ।

वसंती-इसीका नाम सौतियाडाह है, अच्छा फिर ?

माधवी-तब महाराजने रानीसे यह प्रतिज्ञा करके घड़ी भरको आराम किया था कि-प्रभातकालके मांगलिक,शब्दयुक्त वन्दीजनोंकी स्तुतियोंने उनको महारानीके बाहुबन्धनसे बाहर निकाल लिया उसी समय महाराज मुख धोकर इधरको आये हैं, यही अनुमान करके भेद मँगाने के निमित्त मुझ को इधर भेजा है, अब तेरी महारानी और महाराजका साक्षात्कार होने पर क्या गुल खिला सो तो सुना ?

वसन्ती-बातचीत तो कुछ हुई नहीं, महाराज आकर पलँग पर बैठ गये, यह देख महारानी उठीं और मेरा हाथ पकड कर कहने लगीं कि-मेरा स्नान करनेका समय होगया, चल मुझे स्नानालयमें लिवा चल तथा और दासियोंको आज्ञा दी कि-

सरकार कल रात भरके थके और जगे हैं, उनको पलँग पर निद्रा लेने दो और तुम इनकी इच्छानुसार सेवामें लगी रहो, इतना कहने पर मैं महारानीको लेकर स्नानागारमें गई तहाँ नियमानुसार स्नान करके महारानी पीली साड़ी पहरे हुए देव-मन्दिरमें जाकर पूजा करनेलगीं और मुझको महाराजके समीप जानेकी आज्ञा दी सो मैं उधर ही को जारही हूँ।

माधवी-अच्छा तो अब मैं भी जाती हूँ (ऐसा कह कर चली गई)।

(इतनेमें ही सुविचार मन्त्रीका प्रवेश)

सुविचार-(आगेको देख कर) यह तो, महारानी मदनमञ्जरीकी दासी वसन्ती आरही है, इससे भेद निकालूँ ऐसा कहकर वसन्तीसे) अरी वसन्ती! जरा इधर तो आ; तुझसे बड़ा आवश्यक कार्य है।

वसन्ती-(सामनेको देखकर) क्या मन्त्रीजी हैं (ऐसा कह समीप जा कर) महाराज! क्या आज्ञा है?

सुविचार-वसन्ती! मैं महारानी मदनमंजरीसे एकान्तमें कुछ सम्मति करना चाहता हूँ, इसका अवसर किसी प्रकार मिल सकता है क्या? मैं जानता हूँ महारानी तुझसे बड़ी प्रीति रखती हैं, इसकारण यह काम जैसा तुझसे होगा तैसा दूसरेके हाथसे नहीं होसकेगा।

वसन्ती-महाराज इस कामके सिद्ध होनेका तो अभी अवसर है! इस समय महारानी साहब स्नान करके देवमन्दिरमें पूजाके निमित्त अकेली ही बैठी हैं, आइये चलिये, बस काम बना ही समझिये।

सुविचार-अच्छा तो जा मेरे आनेकी खबर देकर भीतर प्रवेश होनेकी आज्ञा लेआ।

वसन्ती-बहुत अच्छा, मेरे साथ आइये [ऐसा कह कर दोनों जाते है]

❀ तृतीय-दृश्य ❀

महारानीका देवमन्दिर।

(तदनन्तर पुजारीके साथ पूजा करती, आसन पर बैठी रानी मदनमंजरीका प्रवेश)

रानी-(पुजारीसे) महाराज! ठाकुरजी को मैंने स्नान करा दिया, अब आप सब मूर्तियोंको पोंछ कर सिंहासन पर पधराओ और सबके आभूषण पहरादो।

पुजारी-जो आज्ञा (ऐसा कहकर मूर्तियोंको पोंछकर वस्त्र और गहने पहराता है, इतने ही में रात भर जागनेके कारण रानीको औंघाई आती है और वह पीछेकी दीवारसे शिर लगा कर सो जाती है, यह देख पुजारी भी विचारमें पड़ा खडा रहता है (इतने हीमें सुविचार मन्त्री और वसन्ती दासी, यह दोनों आते हैं)

वसन्ती-मन्त्रीजी! इधरको आइये, (दो पग चलकर) वह देखो महारानी साहब बैठी हुई अनन्यभावसे भगवानकी पूजा कर रही हैं। मैं जाकर आपके आनेकी सूचना देती हूँ, तब तक आप यहाँ ही खड़े रहें।

सुविचार-ठीक है, तू जाकर महारानी साहबसे मेरे विषयमें आज्ञा लेकर आ।

वसन्ती-बहुत अच्छा (ऐसा कर समीप जा उस दशामें स्थित हुई देखकर) महारानी साहब ध्यानमें हैं या सो रही हैं? (विचार कर) ठीक ठीक समझ गई। कल रात भर निद्रा न होनेके कारण इस समय आँख झपक गई है (फिर इशारे से मन्त्रीको पास बुलाती है और मन्त्री भी आता है)

सुविचार-क्यों वसन्ती! महारानी साहबकी आज्ञा ले ली क्या?

वसन्ती-मन्त्रीजी! महारानीको इस समय जरा झपकीसी

लग गई है सो क्षणभर खड़े होकर देखें तो सही क्या चमत्कार होता है [ऐसा कहकर दोनों देखते हुए खडे रहते है]

रानी-[सोतेमें ही] प्राणवल्लभ ! सारी रात्रि भर मेरी वेत्रवती [दासी] की समान गलितस्तना स्त्री पर मदनछत्र होकर, कुपात्रमें सत्पात्रपना मानकर, वात्स्यायनसूत्रवृत्ति [काम-शास्त्र] का अभ्यास करनेके लिये शृङ्गाररूपी सत्र [यज्ञ] में दीक्षित हुए, परन्तु हे आर्यपुत्र ! वीतिहोत्र [अग्नि] से पतित शुष्कपत्रवनकी समान इस अबलाका गात्र भस्ममात्र होजायगा, यह विचारकर आपके चित्तमें तिलमात्र भी दया क्यों नहीं आई?

सुविचार-[घबड़ाकर] क्यों वसन्ती ! इस समय यह महा-रानी साहबकी बातें अट्ट सट्ट नहीं हैं क्या ?

बसंती-मंत्रीजी इसका बीज कुछ और ही है, वह बिना बताये आपके ध्यानमें नहीं आसकता, परन्तु यह तो सोतेमेंकी बर्राहट है।

सुविचार-बसंती ! इस ढङ्गसे तो मुझे ऐसा अनुमान होता है कि-शायद कल रात महाराज कहीं और रहे थे ?

वसन्ती-(मुख ही मुखमें हँसकर) अच्छा आगेको क्या होता है सो देखो !

मदनमञ्जरी-(निद्रामें ही) प्राणनाथ ! इष्टजनको तुष्ट करने के लिये मुझको कष्ट देकर उस नष्ट मन्मथाको यथेष्ट आनन्द देनेमें आपने अपने अधरको केवल भ्रष्ट ही किया और चण्डांशु सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंके इस ब्रह्माण्ड मण्डल पर ताण्डवनृत्य करने पर उस गर्वभरी स्त्रीके शर्वदर्प (कामदेव) को खर्व करनेके लिये सर्व शर्वरीमें निद्रा न पड़नेसे निस्तेज हुए पर्व-शशिसमान मुखको वस्त्रके आंचलसे ढककर मुझे समझानेके लिये आये हो क्या ? तो लो अब मैं आपसे बोलना ही छोड़ देती हूँ।

वसंती-(दया करके) अरेरे ! रातभर हृदयमें घुटने वाली बातें इस समय निद्राकी बेखबरीके कारण रानी साहबके मुख से स्वयं ही बाहरको निकल रही हैं।

सुविचार-वसन्ती ! ध्यान दिया ? देख तो इन बातोंमें रानी साहबकी वाक्य रचना कितनी सुन्दर है ? निरन्तर सकल विद्यानिधि महाराजका साथ होनेसे जैसे लोहा पारसका स्पर्श होनेसे सोना होजाता है तैसे ही होकर रानी साहबकी वाणीमें मानों सरस्वतीका वासा ही होगया है, अच्छा देखो अब आगे को क्या हाल मालूम होता है।

वसंती-आज महाराज रानी साहबके मन्दिरमें सूर्योदयके समय आये थे, तबतकका हाल तो खुलगया; देखो आगेका क्या गुल खिले ?

रानी-[निद्रामें ही] वाः चूक होगई ऐसा समझकर चरण पकड़नेमें भी लाज नहीं लगती, अच्छा तो लो मैं यहाँ बैठतीभी नहीं, मेरे स्नानका समय होगया, वसंती ! मुझे स्नान करनेको देर होती है, स्नानके स्थानमें लेचल [ऐसा कह उठकर चलने लगती है, मंत्री घबडाकर दूरको हटता है और रानी भी जाग कर लज्जित होती हुई फिर नीचे बैठती है] वसन्ती ! तू यहाँ कब आई ?

वसन्ती-सरकार ! आपके मुखसे स्वाभाविकही सुंदर वाक्य रचना प्रकट होरही थी उसी समय आई हूँ।

रानी-वसन्ती ! सौतिया डाहरूप आँधीका झोका मेरे क्रोध रूप समुद्रको क्षुब्ध करता है अब मैं क्या करूँ ? आज मुझसे पूजन पाठ भी तो नहीं बनसका।

वसंती-सरकार ! तुम अपने कोमल चित्तको इस दुष्ट क्रोध के वशमें न होने दो, नहीं तो बड़ा कष्ट होगा, चित्त संतोष और धैर्य रखनेसे परमसुख और कार्यकी सिद्धि होती है।

रानी-[चौंककर] भला कैसे सन्तोष करूँ? महाराजने हमसे कपट करके उस भसन्तोको प्रसन्न करनेमें सारी रात बितादी, क्या यह थोडा अपराध किया है? अब परमेश्वर मुझे उनका मुख भी न दिखावे।

वसंती-रानी साहब! यदि क्रोध न करो तो मुझे एक प्रार्थना करनी है।

रानी-अच्छा कहो. तेरा कथन तो मुझको अमृतसे भी मिष्ट लगता है।

वसन्ती-सरकार! मेघको सब देशके चातक एक समान हैं क्या २ से सबोंके मनोंको यदि वह शांति न देय तो उसको जीवानन्द कौन कहे?

रानी-[विचारकर] धन्य दासी धन्य! तेरी इस चतुरता को देखकर तुझको दासी कहते हुए भी मुझको लज्जा लगती है सखि! मैंने वृथा ही उन अपने प्राण प्यारेको दोष लगाया!

वसन्ती-परंतु सरकार! यह आपके श्रेष्ठ मंत्री आपसे कुछ प्रार्थना करनेको आये हैं, यदि आज्ञा हो तो यहां बुलालूँ

रानी-क्या सुविचार हैं? वाः मेरे मनमेंके दुर्विचार दूर होनेही क्या सुविचार आगये? वसन्ती! पहिले तो एक आसन लाकर यहाँ बिछादे, फिर उनको बुलाला।

वसन्ती-जो आज्ञा [इतना कह आसन लाई और बिछा कर मन्त्रीको इशारेसे बुलाया मंत्री भी आकर प्रणाम करके आसन पर बैठगया]।

रानी-मंत्रीजी! आप तो बिना आवश्यक कामके इधर आते ही नहीं हैं और तिसपर भी आज आप कचहरीके समय में इधर आये हैं इससे प्रतीत होता है कि आज आपको कोई बडी आवश्यक सम्मति करनी है?।

सुविचार-महारानी साहब ! आप अपनी चतुरताके कारण ही, सब रणवास भरमें चतुरशिरोमणि कहलाती हो अतएव मैं आपसे कुछ सम्मति लेनेको आया हूँ ।

मदनमञ्जरी-फिर विलम्ब क्या है ? जो कुछ कहना हो, कहिये ।

सुविचार-सरकार ! वह बात बहुत ही गुप्त है इस कारण सबके सामने निवेदन नहीं करसकता ।

मदनमञ्जरी-(दासी और पुजारीसे) तुम बाहर बैठो और किसीको भीतर न आने देना ।

दासी और पुजारी-जो आज्ञा [ऐसा कहकर बाहर जाते हैं]

मदनमञ्जरी-क्यों मन्त्रीजी ! अब तो कुछ खटकेकी बात नहीं है ? कहिये क्या कहना है ?

सुविचार-महारानी साहब ! मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ वह पहले तो आपको नई बात मालूम होगी परन्तु पूरा२ विचार करनेपर उसका तत्त्व समझमें आजायगा, परमेश्वरने जो आप को परम चतुरता दी है इस समय उससे काम लीजिये ।

मदनमञ्जरी- मन्त्रीजी ! कहिये तो सही, आपने कोई उत्तम ही विचार किया होगा ।

सुविचार-अच्छा तो सुनिये सरकार ! महाराजका फिर जीवित होना कैसे चमत्कारकी बात हुई है?और उनके स्वभावमें भी कितना लौटफेर होगया है ! इत्यादि अद्भुत बातोंका गुप्त रहस्य क्या है ? इस विषयमें श्रीमतीने आज तक कुछ विचार किया है क्या ?

मदनमञ्जरी-[हँसकर] वाह मन्त्रीजी ! तुम वास्तवमें बडे चतुर हो, क्या कहूँ जब जब मैं अकेली बैठी होती हूँ तब तब मेरे मनमें यही विचार फिरते हैं परन्तु तत्त्व कुछ समझमें नहीं

आता और तुम जो कुछ कहरहे हो, यह ठीक ही है बात २ में पहिले स्वभाव और आजकलके वर्त्तावको मिलाने पर पृथ्वी आकाशकासा अंतर प्रतीत होता है, और दूसरा प्रमाण देने की क्या आवश्यकता है आज कल महाराजने जो एक ग्रन्थ बनाया है, बडे २ पंडित उसकी प्रशंसा करते है, उसीसे पहिली और अबकी योग्यताका पूरा २ पता लगरहा है।

सुविचार-वास्तवमें आपने अकाट्य प्रमाण दिया है आज कल जो महाराजने अमरक नाम वाला ग्रन्थ बनाया है उसमें सकल शृङ्गार शास्त्र और अलंकार शास्त्रको कूट २ कर भर दिया है, इस बातको आपकी राजसभाके परम प्रसिद्ध विद्यामुकुट पण्डितजी भी कहते हैं और इस पुनर्वार जीजानेसे पहिले महाराजसे बातचीत करनेमें यदि कोई एक भी संस्कृत का शब्द आजाता था तो उसके अर्थको कितनी ही देर तक विचारते रहते थे, सो इतना ज्ञान एक साथ कैसे होसकता है?

मदनमंजरी-[सकुचाकर] ऐसी बातें मैं तुमको कहाँ तक सुनाऊँ ? मुझे तो सब ही बातोंमें बड़ा भारी अचरज होता है और मेरी तो बुद्धि ही इस विषयमें कुछ काम नहीं देती ! परंतु तुमने इसमें क्या तत्त्व समझा है वह भी तो सुनाओ ?

सुविचार-रानी साहब ! मैं निश्चय कहता हूँ कि-किसी योगीने राजयोग साधनेके लिये इस राजशरीरमें प्रवेश किया है।

मदनमंजरी-(घबड़ाकर) मन्त्रीजी ! यदि यह सत्य है तब मुझको बड़ा भय होगया ! क्योंकि-उस योगीने हमको भ्रष्ट कर दिया।

सुविचार-[हँसकर] छिः छिः आपको ऐसा सन्देह न करना चाहिये, संसारके सब नाते शरीरसे हैं, जीवके सम्बन्ध से नहीं है, क्योंकि-यह विकार जीवमें हो ही नहीं सकते, इस

कारण जिस शरीरसे आपके शरीरका स्त्री और पतिभाव रूप सम्बन्ध हुआ था, वही तो शरीर है, केवल जीव बदल गया, इससे आपको कुछ दोष नहीं लग सकता।

मदनमंजरी-यदि यही तत्त्व है तब तो चित्तको कुछ शान्ति होती है! परन्तु मन्त्री जी! यही महाराज चिरकाल तक इस शरीरमें रहें, इसका कोई उपाय होसकता है क्या?

सुविचार-महारानी साहब! इस बातका सब प्रबन्ध करके ही मैं आपकी सम्मति लेनेको आया हूँ, मैंने यह काम करना विचारा है कि-अभी जाकर सारी पृथ्वी पर दूतोंको भेजूँगा, वह जहाँ जहाँ कोई मृतक शरीर पावेंगे उसको भस्म करडालेंगे तब अवश्य ही कहीं न कहीं इन योगिराजका शरीर भी भस्म हो ही जायगा तब यह लाचार होकर चिरकाल तक इस राज-शरीरमें ही रहेंगे।

मदनमंजरी-यह तो बहुत अच्छी युक्ति है! अब आप जा कर इस कामको शीघ्र ही कर डालिये और दूतोंको समझा दीजिये कि-वह बहुत ही ध्यानके साथ पृथ्वी भरके मृतक शरीरोंको ढूँढ २ कर जला डालें, समझ गये न?

सुविचार-इस विषयमें सरकार कुछ चिन्ता न करें, अच्छा तो अब मैं आज्ञा चाहता हूँ।

मदनमंजरी-जाइये प्रधानजी! आपके इस उपकारको मैं जन्म भर कभी नहीं भूलूँगी [परदेकी ओरको देखकर] कौन है उधर!

बसंती-(दौडती हुई आकर) रानी साहब क्या आज्ञा है?

मदनमंजरी-बसन्ती! यह मन्त्रीजी जाते हैं, इनको हमारे रणवासके रखवाले सिपाहियोंमेंसे कोई न रोके, इस कारण तू इनके साथ जाकर पहुँचा आ।

बसन्ती-जो आज्ञा (ऐसा कह कर मन्त्रीसे) चलिये सुविचारजी !

(ऐसा होने पर सुविचार मन्त्री नमस्कार करके दासीके साथ जाता है और फिर लौट कर बसन्ती दासी आती है)

मदनमंजरी-[दासीको आई हुई देखकर] अरी बसन्ती ! कुछ समय पूजामें और कितना ही समय मन्त्रीजीके साथ संमति करनेमें बीत गया परन्तु उधरसे अवसर मिलते ही फिर मेरा चित्त महाराजके ही देखनेको चाहने लगा, क्या करूँ ?

बसन्ती-महारानी साहब ! आपने आज ही तो यह मण ठाना था कि-मैं अब महाराजसे कभी नहीं मिलूँगी, क्या वह सब विचार पानी पर लिखे हुए अक्षरोंकी समान जरा देरमें विला गया !

मदनमंजरी-सखि ! यदि मच्छी जलका त्याग करना चाहे तो उसको प्राण त्यागनेके लिये भी तयार होना चाहिये इसी कारण कहती हूँ कि-जैसे हो तैसे अब तो उन शृंगार समुद्रके साथ इस चण्ड नदीका संगम होनेसे ही शान्ति होगी ।

बसन्ती-सरकार ! आप घवड़ावें नहीं, मैं अभी मन्त्रीजीको पहुँचाने गई थी तो इसका पता लगाया था कि-इस समय महाराज कहाँ हैं, तब मालूम हुआ कि-अभी भोजन करनेको बैठे हैं, इससे मैं निश्चित कहती हूँ कि-भोजनसे निवटते ही वह ताम्बूल खानेको आपके ही रंगमहलमें आवेंगे, इसकारण आप भी अब शीघ्र ही भोजनसे निवट लें ।

मदनमंजरी- परन्तु हमारे महलकी रसोई तयार है क्या ? इसका पता तो ला ।

बसन्ती मैं अब उधरको ही होकर आई थी, सब तयारी है आप चलिये ।

मदनमंजरी-अच्छा तो चल [ऐसा कहकर दासीके साथ जाती है]

❀ चतुर्थ-दृश्य ❀

(अमरक राजाके नगरसे बाहरका स्थान)

पद्मपाद, हस्तामलक, त्रोटक आदि शंकराचार्यजीके शिष्य नारायण नारायण शब्दकी ध्वनि करते हुए प्रवेश करते हैं)

हस्तामलक-पद्मपादजी ! गुरु महाराजने जो एक मासकी अवधि की थी वह तो पूरी होगई, परन्तु अभी तक आये नहीं इस कारण कुछ शिष्योंको यहाँ गुफामें श्रीमहाराजके शरीरकी रक्षाके लिये छोड़कर, हम उनको खोजनेके लिये कितने ही दिनोंसे फिर रहे हैं, परन्तु अभी तक कुछ भी पता नहीं लगा, भला अब क्या करें ?

पद्मपाद-जिस समय गुरु महाराजने यह कहा था कि-'मैं दूसरे शरीरमें प्रवेश करने को जाता हूँ मुझे ध्यान होता है कि उस समय उन्होंने यह भी तो बात बताई थी कि मैं अमुकके शरीरमें जाऊँगा ? परन्तु इस समय वह नाम मुझे स्मरण नहीं आता ? इसी कारण इतना कष्ट उठाना पड़ रहा है।

त्रोटक-भाई तुम कैसी बातें कर रहे हो !-कहीं अन्धकारमें सूर्य छिप सकता है ? उत्तम कस्तूरीको वस्त्रमें बाँध कर रखनेसे क्या उसकी गन्ध छुप सकती है ? इसी प्रकार सकल विद्याओंके समुद्र गुरुमहाराज चाहें जहाँ हों, अद्भुत शक्तिके कारण अवश्य ही पहिचानमें आजायँगे, इसीलिये चिन्ता न करो, थोड़े ही समयमें उनका पता लगा जाता है।

हस्तामलक-अब हम इस अमरक राजाकी नगरीके समीप आपहुँचे हैं, यहाँ भी तो गुप्तरूपसे ढूँढ लेना चाहिये।

पद्मपाद-यहाँ तो खूब सावधानीसे खोजनेके लिये मैंने चिदाभासजीको नगरके भीतर भेज ही दिया है कुछ देर इस बगीचे बैठकर उनके लौटनेकी बाट देखना चाहिये।

इतने ही में नारायण२ करते, चिदाभासाचार्य प्रवेश करते हैं।

हस्तामलक-[उनको देखकर] चिदाभासजी तो वह आरहे हैं, देखें क्या कहते हैं ॥

पद्मपाद-(चिदाभाससे) कहो भाई ! काम बना या निराश ही लौटे ।

चिदाभास-मित्रों ! निराशाका तो नाम भी न लो, जिनके लिये हम व्याकुल हुए फिरते हैं वह हमारे परम हितू जीवन प्राण यहाँ ही हैं ॥

पद्मपाद-(बड़े उल्लाससे) यह तुमने कैसे जाना ? बताओ तो सही ।

चिदाभास मैं सब वृत्तांत कहता हूँ, सुनो, तब ही तुमको शांति होगी, तुम्हारे कहनेके अनुसार मैं वेष बदलकर नगरभर के सब ही गृहस्थोंके घर घूमा, तब कहीं कहीं अमरक राजाके आश्चर्य भरे चरित्र मेरे कानोंमें पड़े, परन्तु हमारे प्रयोजनकी बात कहीं भी सुननेमें नहीं आई,जहाँ देखा तहाँ राजाके बोलने की प्रशंसा उसीकी चतुराईकी चर्चा, उसीकी शूरताकी वाहवाह उसीकी पण्डिताईका चकरवा और उसीकी उदारताकी बातें सुननेमें आईं, तब मैंने ताडा कि-हमारे इष्टदेव हों न हों तो इसी राजाके शरीरमें हैं ।

पद्मपाद-अच्छा फिर ।

चिदाभास-फिर मैं गुप्त वेशसे उस राजाके रणवासमें गया तहाँ, क्या कहूँ जो अद्भुत शोभा देखी उसका तो मुझसे वर्णन ही नहीं होसकता; उस राजाके रणवासमें जो सैंकड़ों रानियें हैं वह सब ही रूपसे देवांनाओंको भी लज्जित करने वाली हैं, मैं उनमेंसे हरएकके महलमें गया तो उस समय वह यही मना रही थीं कि महाराज कब आवेंगे और हमारे चित्तको संतुष्ट करेंगे तथा सबही अपनी२ दासियोंको महाराजको प्रसन्न करने वाले उपभोगके पदार्थोंको तयार करनेके निमित्त कहरहीं थीं इन सब

बातोंके देखनेसे मुझे निश्चय होगया कि यह राजा जैसा सब का प्यारा है तैसा ही बड़ा भारी उपभोगी और कामशास्त्रमें चतुर भी होगा, परन्तु मुझको जैसा आनन्द होना चाहिये तैसा प्राप्त नहीं हुआ, क्योंकि मेरे प्यासे कानोंको जो नयनामृत मिलना चाहिये था वह मिला ही नहीं।

पद्मपाद-अच्छा फिर क्या किया ?

चिदाभास-तहाँसे फिर मैं नदीके तटपर चला गया, तहाँ कोई स्नान कररहे थे, कोई सङ्कल्प पढरहे थे, कोई आसन बिछाकर सन्ध्या आदि नित्य क्रिया कररहे थे, कितनी ही सौ-भाग्यवती स्त्रियें स्नान करके वस्त्र पहिन रहीं थीं; और कितनी ही शिरोंपर जलके भरे कलश धरे आपसमें अपने २ घरकी सुख दुःखकी बातें कहती हुई चली जारही थीं, परन्तु मेरी इच्छा तहाँ भी पूरी होती न दीखी तब मैं उस घाटसे ऊपरको चल दिया आगे जाकर मुझको पुरुषोंकी भीड़ कुछ२ कम प्रतीत हुई और तहाँ एक तरुणी स्त्री एक युवा पुरुषके साथ कुछ बातें कररही थी, यह देख मैं उनके समीप गया और उनकी बातें सुनने लगा।

पद्मपाद-फिर क्या हुआ ?

चिदाभास-सुनो वह दोनों बड़े डर २ कर बातें कररहे थे और उनकी बातोंसे मुझको यह प्रतीत हुआ कि यह कोई राजा के अपराधी हैं, मित्रो ! अब मैं तुमको बहुत देर सन्देहमें डाले रखना नहीं चाहता, मेरे कानरूपी चकोरोंको उन दोनोंकी बातें ही चन्द्रमाकी समान आनन्ददायक हुईं।

पद्मपाद-(उत्कंठासे) कहो, कहो, वह बातें शीघ्र सुनाओ ?

चिदाभास-वह स्त्री बोली भाड़में जाओ अब तुम्हारा अज्ञात-वास (लुककर रहना) मैं इस वियोगके दुःखको कबतक सहती रहूँ ?, इसपर वह पुरुष कहने लगा कि हे प्राणप्रिये ! वियोग

का दुःख तुम्हें ही होता है मुझे क्या नहीं होता है ? परन्तु क्या करूँ महाराज अमरुक मुझसे अप्रसन्न होगये हैं, उनको नगरीमें मेरे आनेका समाचार मिलते ही वह मुझको प्राणान्त दण्ड दिये बिना कभी भी नहीं छोड़ेंगे इस कारण प्रिये ! जैसे आज तकके दिन बिताये हैं तैसे ही कुछ थोड़ेसे दिन और भी दुःख सहलो ।

पद्मपाद-(बीचमें ही) इसपर वह स्त्री क्या बोली ?

चिदाभास-हाँ हाँ जरा धीरज रक्खो, फिर वह स्त्री कहने लगी कि हे प्राणनाथ ! अब तुम राजाका भय कुछ न मानो, क्योंकि वह राजा तो परलोकको सिधार गया आज कल जो राज्य कररहा है वह तो बड़ा साधु परमनीतिमान् और अत्यन्त दयालु कोई योगी है, इसपर उस पुरुषने चकित होकर बूझा कि हे प्रिये ! तू जाने क्या कहरही है ? मेरी तो समझमें नहीं आया, क्योंकि थोड़े दिन हुए अभी जो राजा मेरे ऊपर क्रुद्ध हुआ था उसीको मैंने अब देखा है, न जाने तू उसका मरण होना कैसे कहरही है ?

पद्मपाद-इसपर उस स्त्रीने क्या उत्तर दिया, वह भी तो बताओ ?

चिदाभास-तब वह स्त्री कहने लगी कि अभी तुमको भेद नहीं मालूम है, मैं कहती हूँ, सुनो तुम्हारे ऊपर जिसका कोप हुआ था वह राजा कुछ दिन हुए रोगी होकर मरगया, उसी समय उसको स्मशानमें दाह कर्म करनेको लेगये थे, सो स्मशान में पहुँचते ही वह एक साथ जीउठा तब तो सबको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ ! वह दुसराकर जीवित हुआ राजा ही आजकल राज्य कररहा है और इसके आज कलके गुणोंसे पहिले गुणों को मिलानेसे पृथ्वी आकाशकासा अंतर दीखता है, कुछ

सम्बन्ध ही नहीं बैठता इस कारण यह कोई योगी, राजयोग साधनेके लिये आया होगा, इस बातका राज्यके चतुर मंत्रियों ने और रणवासकी सब रानियोंने निश्चय करलिया है, इस कारण हे प्यारे! अब तुम आनन्दके साथ घरको चलो, इस पर वह पुरुष बडा प्रसन्न होकर उसके साथ चला गया, क्यों मित्रों! इससे सब तत्त्व तुम्हारी समझमें आगया या नहीं? मैं तो पूरे निश्चयसे कहता हूँ हमारे गुरुमहाराज यहाँ ही है।

(उस समय सब शिष्य नारायण शब्दकी ध्वनि करते हैं)

पद्मपाद–मित्रों! अब विलम्ब न करो, गुरुमहाराजको विषयोपभोगके कारण इस शरीरका स्मरण नहीं रहा है सो अब मैं गवैया बनकर उस राजाके पास जा गाना गाता हूँ उस गायनमें ही इस तत्त्वका स्मरण दिलाऊँगा तब वह स्मरण होते ही उस राजशरीरको त्यागकर अपने इस पहिले शरीरमें आजायँगे।

हस्तामलक–उस समय आपको भी पूर्ण रीतिसे सावधान रहना चाहिये, क्योंकि वह स्मरण होते ही उस शरीरको त्याग देंगे तब मंत्री आदि कहीं सन्देहमें पकडकर, आपकी दुर्दशा न करडालें?

पद्मपाद–छिः छिः इसकी तुम कुछ चिंता न करो उनको स्मरण होते ही मैं योगबलसे अंतर्धान होकर यहां तुम्हारे पास ही आपहुँचूँगा, अब तुम सब इस गुफामें ही जाकर बैठो केवल चिदाभासजीको ही मेरे साथ रहनेदो क्योंकि यह नगरका सब भेद जानते हैं, अच्छा तो अब तुम सब गुफामेंको जाओ, मैं भी चिदाभासजीके साथ नगरीमें जाता हूँ।

(तदनन्तर सब नारायण नारायण करते हुए जाते हैं)

❀ पञ्चम-दृश्य ❀

(मदनमञ्जरीका रंगमहल)

(वसन्ती दासीके साथ मदनमञ्जरीका प्रवेश)

मदनमञ्जरी-सखी वसन्ती ! मैं तो भोजन करके इस महलमें आबैठी; अब महाराज इधरको आवें तभी ठीक है, नहीं तो सब वृथा है जाने महाराज अभी भोजनसे निबटे होंगे या नहीं ?

वसन्ती-सरकार भोजन करके अभी उठे हैं, निःसन्देह अब इधरको ही आवेंगे, परन्तु उनके आने पर अब तुम किस ढंगका वर्त्ताव करोगी ?

मदनमंजरी-हाँ ! ठीक प्रश्न किया, पहिले इस बातका निश्चय कर लेना उचित है, सखि ! यद्यपि महाराज मुझको धोखा देकर कल रात सौतके घर गये थे; तथापि मेरे ऊपर उनका प्रेम कम नहीं हुआ है, यह बात मैं निश्चय कह सकती हूँ, इसकारण अब महाराजकी सवारी आने पर उनसे कोप न करके उनको प्रसन्न करना ही उचित है !

वसन्ती-आप जो कुछ कहरही हैं, बहुत ठीक है, परन्तु ऐसा करनेमें कामदेवके नाटकका पूरा २ रंग नहीं जमेगा, आगे आपकी जैसी इच्छा हो सो करें ।

मदनमंजरी-(हँसकर) वसन्ती ! मुझको तू चित्तके अनुकूल ही दासी मिली है, मैं तेरा ही कहना करूँगी, परंतु तांबूल अंगराग आदि सब उपभोगकी सामग्री तो तयार है न ?

वसन्ती-महारानी साहब ! आपके विलासभवनमें क्या किसी प्रकारकी कमी रह सकती है ? आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें आज और दिनसे अधिक सामान तयार कर रक्खा है ।

(इतनेमें ही परदेके भीतर शब्द होता है)

आलोलामलकावलीं विलुलितां बिभ्रच्चलत्कुण्डलम्।
किञ्चिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसां जालकैः ॥

तन्व्या यत्सुरतान्ततान्तनयनं वक्त्रं रतिव्यत्यये ।
तत्त्वां पातु चिराय किं हरिहरब्रह्मादिभिर्दैवतैः ॥

मदनमञ्जरी-सखी बसन्ती ! तूने श्लोक सुना क्या ? आहा ! कैसी मधुर वाणी है ! सखि ! मन्त्र जानने वालोंके मुखसे मन्त्रका उच्चारण होते ही जैसे पिशाचका संचार होता है तैसे ही प्राणनाथके कहे हुए श्लोकको सुनते ही मेरे शरीरमें काम-देवका आवेश होकर शरीर परकी कंचुकीके सैंकड़ों टुकडे होगये !

बसन्ती-महारानीजी ! यह क्या ! अभी तो दर्शन भी नहीं हुआ है तिस पर यह दशा ! भला उस कामदेवकी समान सुंदर मूर्त्तिके नेत्रोंके सामने आने पर तुम मेरी सम्मतिसे क्या काम ले सकोगी ? वह देखो महाराज समीप ही आगये. यह सरकार को मन्दिरमें पहुँचाकर सब सेवक भी पीछेको लौट गये, अब मैं कहूँ तैसा करिये, इस पलँग पर, हथेली पर गालको रख कर नीचेको देखती हुई चुप वैठ जाओ, महाराज चाहे जितने उपाय करें ऊपरको मत देखियो और मैं भी तुम्हारे पीछे चुप सी सुस्त खडी रहूँगी और जब मैं इशारा करूँ उसी समय सर-कारका कहना मान लेना तो वड़ा आनन्द होगा ।

मदनमंजरी-वहुत अच्छा, जैसा तूने कहा ऐसा ही करूँगी (ऐसा कहकर दासीके कहनेके अनुसार वैठती है और दासी पीछेकी ओर खड़ी होती है)

(इतने हीमें अमरक राजा आते हैं)

राजा-(उसी श्लोकको फिर पढ़ कर) भगवन् कामदेव ! सृष्टि पालन और प्रलय करने वाले ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी तुम्हारी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकते, फिर अन्य संसारी जीवोंका तो कहना ही क्या है ? हे मकरध्वज ! रतिमें मद मस्त हुई स्त्रीके सकल शरीरमें जब तुम्हारा निवास होता है उस

समय तिस कामिनीके मुखके माहात्म्यका क्या वर्णन करूँ ! निर्लज्जताके साथ क्रीड़ा करनेको तयार होनेके कारण सब केश खुलकर बिखर जाते हैं, सब इच्छा पूरी होनेकी आशासे आनन्दपूर्वक गरदनको हिलातेमें कानोंमेंके मोती और गहने कपोलों पर झूलने लगते हैं, पतिके शरीरको दूधमें जलके मिलनेकी समान आलिंगन करनेके कारण आये हुए पसीनेकी बूँदोंसे ललाट परका केसरका तिलक कुछ पुछसा जाता है, सुरत सुखका पूरा २ आनन्द पानेके लिये उधर ही को चित्त लव-लीन होजाने पर विशालनेत्र कुछ एक मुँद जाते है, ऐसे लक्षणों वाला स्त्रीका मुख, वह कार्य कर सकता है कि-जिस कार्यको चाहे एक बार ब्रह्मा और शिव विष्णु भी न कर सकें, इस कारण सुख चाहने वाले पुरुषोंको उस मुखकी ही उपासना करनी चाहिये ।

मदनमंजरी-सखी बसन्ती ! चन्द्रमाका उदय होने पर कुमुदिनी न खिले, इसके लिये कोई कितना ही यत्न करो वह व्यर्थ ही होगा, यही दशा मेरी होरही है, इस कारण जैसे चन्दनके वृक्षको नइ मालतीकी बेल लिपट जाती है तैसे ही मैं महाराजको कौलिया भर कर लिपट जाऊँ क्या ?

बसन्ती-सरकार ! अभी थमिये, ऐसी अधीर होनेसे बना बनाया सब काम बिगड जायगा, ऐसे धीरपनेका ढोंग बनाने पर अधीरताका लड़कपन शोभा नहीं देता है ।

राजा-(दो पग बढ़कर) रानीके सन्मुख हो) ओहो ! यह क्या चमत्कार है ? (फिर अपने आप ही अटकल लगाकर) यह क्या सोलह कला पूर्ण शरद्‌ ऋतुका चन्द्रमा है ? अथवा आकाश गंगामेंका अत्यन्त दमकता हुआ सुवर्णका कमल है ? अथवा स्वच्छ बिल्लौरकी थाली है ? (बिचार कर) छिः छिः

यह तो मेरी प्राणप्यारीका सुन्दर मुख ोगा। अरे! यह क्या दोनों बड़े २ नील कमल हैं? अथवा स्वच्छन्द तैरने वाली दो मच्छियें हैं? या कामी कुरंगको विह्वल करनेवाले कामदेवके बाण हैं? (विचार कर) नहीं नहीं यह तो मेरी हँसमुख प्यारीके नेत्र होंगे (जरा एक नीचेको देखकर) अरे! यह दो चकवे हैं क्या? या मालतीके फूलोंके गुच्छे हैं? अथवा सोनेके कलश हैं? [विचार कर] यह मुझको कैसा सन्देह होरहा है? यह ो मेरी पिकवयनीके कुच होंगे [फिर उत्प्रेक्षा करके] अरे! यह क्या आँखोंको चौंधाने वाली विज्जुलटा है? अथवा आकाशसे गिरा हुआ तारा है? या सुवर्णकी वेल है? [विचार कर] अरे रे! देखो मुझको बडा भारी धोखा हुआ, यह तो मेरी मृगनयनी मदनमंजरी है।

ऐसा कहकर आलिंगन करनेके लिये उसकी शय्या पर जाकर बैठते हैं उसी समय मदनमंजरी चट्ट उठ कर दूर जाकर खड़ी होती है]

मदनमञ्जरी-[दासीकी ओरको मुख करके] क्यों दासी! भूल तो बड़े २ पण्डितोंकी बातोंमें भी स्वाभाविक होती ही है, क्योंकि-देख महाराजने सब वर्णन बहुत ही ठीक किया परन्तु अन्तमें "पटरानी शृङ्गारचन्द्रिका" इतना भूलकर अभागिनी मदनमञ्जरीका नाम कह गये, अरी! इस वर्णनके योग्य तो वह बुढिया ही है!

राजा-[मनमें] आज मेरे साथ यह उलटा व्यवहार और टेढ़ी २ बातें क्यों हैं? अच्छा समझ गया, कल जो मैं भयंकर संकटमें पड गया था यह उसीका फल है!, रहो, सब स्त्रियों में इसका मेरे ऊपर बड़ा प्रेम है, इस कारण यह कोप बहुत देर नहीं र सकता, थोडी सी मनमें चुभती हुई बातें करने ही से कामह बन जायगा [प्रकाश रूपसे] प्यारी चन्द्रवदनी मदन-

मञ्जरी ! कल रात मैंने तुझको निःसन्देह बडा ही दुःख दिया, परन्तु उसके लिये तुझ चतुराको मेरे ऊपर दोष न लगाना चाहिये, क्योंकि-कल मुझको तेरे आलिंगनके न मिलनेमें जो कारण हुआ था वह वसन्तीने तुझको सुनाया ही होगा !

मदनमञ्जरी-[वसन्तीकी ओरको देखकर] सखि ! अब तुझको ही उत्तर देना चाहिये।

वसन्ती-सरकार ! कलकी दशा क्या कहूँ ? समय अच्छा था और मैंने अपने आप ही जैसे तैसे तहाँका समाचार लाकर सुना दिया था, इसपर महारानी साहबका क्रोध कुछ शांत हो गया, नहीं तो बडी ही कठिनता पडती।

राजा-(पलंगपरसे उठ मदनमंजरीका हाथ पकडकर) जो हुआ सो तो होही गया, फिर अब कोपमें क्यों है ? जब ठीक ठीक वृत्तान्त तुमको मालूम होगया तो मैं निर्दोष हूँ, इस बात का तुमको निश्चय हो ही गया होगा, अब पलँगपर चलो, बहुत देरतक खड़ी रहकर इन कोमल चरणोंको क्यों कष्ट देरही हो? (इतना कह रानीको बलात्कारसे लाकर पलंगपर अपने पास बैठाते हैं)

वसन्ती-अब मेरे नेत्र संतुष्ट हुए।

मदनमंजरी-(कुपितसी होकर वसंतीसे) ऐसी बकबक मुझको अच्छी नहीं लगती, जा द्वार बन्द करके बाहर बैठ।

वसंती-जो आज्ञा, मेरा बोलना ही मुझे निकलवा देनेमें अच्छा कारण हुआ (ऐसा कहकर हँसतीहुई बाहरको जाती है)

राजा-प्रिये ! इस समय तो बडी चतुराईसे दासीको टाल कर एकांत करलिया, इससे मुझको बडी प्रसन्नता हुई, परन्तु अब भी मनमेंके सब कोपको दूर करके शृंगारशास्त्रमें कहेहुए आठ प्रकारके आलिंगनोंमेंसे अपनेको परम प्रिय लगने वाला तिलतण्डुल नामक आलिंगन प्रसन्नचित्त होकर क्यों नहीं देती है ?

मदनमंजरी-जैसे तैसे अपना काम निकाल लेना तो पुरुषों का स्वभाव ही होता है, इस बातको मैं भली प्रकार जानती हूँ और अधिक प्रेमका परिणाम भी दुःख ही होता है, कल रात इस बातका पूरा २ अनुभव होगया है, इस कारण मैं प्रसन्नता से कहती हूँ कि आप आजसे आनन्दपूर्वक कलकी समान वर्त्ताव करें, इसमें मैं तिलभर भी बुरा नहीं मानूँगी।

राजा-प्यारी कोकिलकण्ठी! पुरुष कितना ही विषयी हो परन्तु उसका सच्चा प्रेम सर्वत्र नहीं होता है और जिस एकाध स्थानपर होता है, वहाँ एक साथ इस प्रकारका उलटा भाव दीखते ही उसके जीवनतककी कुछ आशा नहीं रहती है, सो हे विलासिनी! इस अभागेके अन्तःकरणकी अभी तूने पूरी परीक्षा नहीं की है, इसकारण ही तेरे मुखसे ऐसे कठोर अक्षर निकल रहे हैं, प्रिये! तुझसे सत्य कहता हूँ कि यदि तूने ऐसा बर्त्ताव करनेका पक्का निश्चय करलिया हो तो अब मेरे जीवन की आशा छोड़देना।

मदनमंजरी-(अति व्याकुलसी होकर) ऐसे निठुर वचन न उचारिये जरा सत्य २ तो बताओ कल रात जो आपने मुझको कष्ट दिया ऐसा मैंने क्या अपराध किया था।

राजा-प्रिये! मैं सत्य २ कहता हूँ स्त्रियोंकी पद्मिनी चित्रिणी, शंखिनी, और हस्तिनी यह चार जातियें हैं उनमें सबसे श्रेष्ठ जो पद्मिनी जाति तिस जातिकी तू है; इस बातका मैंने निश्चय करलिया है और पद्मिनी जातिकी स्त्रीको रातमें कभी कामशान्तिकी इच्छा होतीही नहीं है, क्योंकि कमल केवल सूर्योदयसे सूर्यास्तके समय तक ही खिला रहता है, इस कारण मैं रात्रिका समय वहाँ बिताकर तुझको प्रसन्न करनेके लिये अब इधरको आता हूँ आगा समझमें?

मदनमञ्जरी-(गालों ही गालोंमें कुछ हँसकर) वाह ! यह तो आपने समयकी गढ़ी, यह ज्ञान आपको कलसेही हुआ होगा ! आपके अनुग्रहसे कामशास्त्रका कुछ थोड़ासा ज्ञान मुझको भी होगया है क्या इसका यथोचित उत्तर दूँ !

राजा-[सकुचाकर] दे दे, इन कानरूपी पिवासे चातकों को तेरे वचनरूप मेघ बड़े ही प्रिये लगते हैं,

मदनमञ्जरी-प्राणनाथ ! कमलको सूर्यका दर्शन चाहें जिस समय हो वह उसी समय खिल उठता है उसमें रात और दिन क्या, तैसे ही मेरे लिये आप सूर्यरूप हैं इस कारण आप जिस जिस समय इस दासीके समीप आवेंगे तब २ ही मेरा हृदय-रूपी कमल खिले विना कदापि नहीं रहेगा ।

राजा-धन्य प्रिये धन्य ! वात्स्यायन ऋषिने कामशास्त्र बनाया है परन्तु तेरी कल्पना उनसे भी आगे बढगई इस कारण वास्तवमें तेरा मदनमंजरी यह नाम योग्य ही है ।

(ऐसा कहकर उसकी ठोड़ीको हाथ लगाकर अपना मुख आगेको करते हैं

मदनमंजरी-[राजाका हाथ एक ओरको करके महाराज ! बलात्कारसे अपना प्रयोजन साधनेमें क्या मजा मिलता है ? जरा धीरज रखिये ।

राजा-प्रिये ! क्या कहूँ ! सुख तो इसमें ही है देख-

सन्दष्टाधरपल्लवा सचकितं हस्ताग्रमाधुन्वती ॥
मा मा मुञ्च शठेति कोपवचनैरानर्त्तितभ्रूलता ॥
सीत्काराञ्चितलोचना सपुलका यैश्चुम्बिता मानिनी ॥
प्राप्तं तैरमृतं श्रमाय मथितो मूढैः सुरैः सागरः ॥

प्रिये ! चुम्बनके समय अधरपल्लवको दबानेपर चकित होकर हाथको झटकने वाली, 'अरे ओ शठ मुझको छोड छोड' इस प्रकार कोप युक्त वचनोंको कहती हुई भौंएं टेढी करने

वाली कुछ एक नेत्र मूँदकर सिसकी भरने वाली स्त्रीको रोमांचित हुए जिन पुरुषोंने चुम्बन किया है उनको ही सच्चा अमृत मिला है बिचारे देवताओंने तो समुद्र मथकर केवल परिश्रम ही किया उनको सच्चा अमृत नहीं मिला !

मदनमंजरी-प्राणनाथ ! ऐसे चातुरीके समुद्र पुरुषपर कौन सी नीच स्त्री अप्रसन्न रहेगी ? महाराज मैंने अबतक जो आप के साथ अनुचित बर्ताव किया इसको क्षमा करिये [ऐसा कह कर राजाको आलिंगन देती है]।

(इतने हीमें परदेके भीतरसे शब्द होता है कि यदि महाराज महलमें हो तो जाकर निवेदन कर सुविचार मंत्री मिलनेके लिये आये हैं)

राजा-प्रिये ! प्रतीत होता है कि परम चतुर सुविचार मंत्री यहाँ आने वाला है इसलिये जरा सावधानीके साथ बैठ।

मदनमंजरी-[शिरका वस्त्र सम्हालकर] ऊँः मंत्रीको भी यही समय ढूँढा था ! ऐसा कहकर दूरको बैठती है]।

(तदनन्तर वसन्ती आती है)

वसन्ती-[राजासे] महाराज ! मंत्रीजी आपसे मिलनेको आये हैं, यदि आज्ञा हो तो उनको यहाँ लिवा लाऊँ ?।

राजा-शीघ्र ही लिवाकर ला।

वसन्ती-जो आज्ञा (ऐसा कहकर परदेके भीतर जाती है और मंत्रीको साथ लाकर उनसे कहती है) मंत्रीजी इधरको आइये महाराज वह रानी साहबके साथ बैठे हैं !

मंत्री-[पास जाकर] महाराज और महारानीका जयजयकार हो [इतना कह नमस्कार करके खड़े रहते हैं]

राजा-मंत्री ! मेरे इधर चले आनेसे किसी राजकाममें गड़बड़ी पडगई क्या ?

मंत्री-सरकार ! आपने ऐसा ढँग ही नहीं रक्खा जो राजकाजमें गड़बड़ी पड़े, सब काम योग्य अधिकारियोंको सौंपकर

फिर भी उनके ऊपर आप सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं, इसी कारण दरबारमें दुःख सुनानेके लिये किसीको नहीं आना पडता है। मैं इस समय यह निवेदन करनेको आया हूँ कि किसी दूर देशसे एक गवैया आया है और उसकी बातोंसे प्रतीत होता है कि अपने काममें वह कमालको पहुँचा हुआ है। ऐसे पुरुषोंके आते ही श्रीमान्को सूचना होनी चाहिये, आपकी यह कठोर आज्ञा है, इस कारण ही मैंने इस समय सरकारको कष्ट दिया है, इसको क्षमा करिये।

राजा-(प्रसन्न होकर) कौन, गवैया आया है? अच्छा उसको बड़े दिवानखानेमें लेकर चलो और अपने यहाँके सब गवैयोंको भी आनेकी आज्ञा दो, मैं भी कुछ देरमें वहाँ ही आता हूँ।

मन्त्री-आज्ञानुसार सब तयारी करनेको जाता हूँ (ऐसा कहकर प्रणाम करता हुआ जाता है।)

राजा-वसन्ती! रानियोंके महलोंमें खबर करा दो कि-आज बडे दिवानखानेमें उत्तम गवैयोंका गाना होगा, इसलिये सब रानियें भी वहाँ पधारें, यह मेरी आज्ञा है।

वसन्ती-जो आज्ञा (ऐसा कहकर जाती है)

राजा-प्रिये! तुमको गायन बडा प्रिय है, इस कारण ही इतना ठाठ किया है, कहो क्या मर्जी है?

मदनमञ्जरी-मेरी इच्छा कभी आपके विरुद्ध होसकती है? लो मैं अभी चलनेको तयार हूँ।

राजा-चलो तो बड़े दिवानखानेमें चलें (ऐसा कहकर दोनों चलने लगते हैं)

मदनमञ्जरी-[अपशकुन सा हुआ देख कर] चलनेको तयार होते ही मेरी दाहिनी आँख फड़कने लगी, न जाने इस समय ऐसे अपशकुन क्यों होते हैं?

राजा—इसकी कुछ चिन्ता न करो, तुम कल रात भर जगी हो इसकारण नेत्रमें ऐसा विकार होगया होगा, तथापि कुछ शांति करनेके लिये उपाध्यायजीसे कहला भेजेंगे, चलो।

ऐसा कह कर दोनों जाते हैं

❀ छठा—दृश्य ❀

[शंकराचार्यजी के शरीर वाली गुफा]

(तदनन्तर शंकराचार्यजी के शरीर को लेकर हस्तामलक आदि शिष्य नारायण नारायण करते आते हैं)

हस्तामलक—अजी त्रोटकाचार्यजी ! हम पद्मपाद और चिदाभासजीको अमरक राजाकी नगरीमें छोड कर यहाँ आये थे, सो उनको कई दिन होगये, अभी तक उधरका कुछ समाचार ही नहीं मिला, इसकारण मुझको बडी चिन्ता होरही है।

त्रोटक—अब तुम अधिक चिन्ता न करो, चिदाभासने जो कुछ काम नगरीके बाहर किया वह मैंने सुना है, प्रतीत होता है अब वह गुरु महाराजको लेकर ही यहाँ आवेंगे।

(इतने ही में परदेके भीतर नारायण शब्दकी ध्वनि होती है)

हस्तामलक—(आनन्दित होकर) यह शब्द तो चिदाभास जी कैसा प्रतीत होता है।

[तदनन्तर नारायण नारायण करते हुए चिदाभासजी प्रवेश करते हैं]

चिदाभास—[घबडाए हुएसे] क्या अभी तक पद्मपाद यहाँ नहीं आये ?

त्रोटक—भाई ! तुम और वह तो एक साथ ही थे, फिर अलग अलग कैसे होगये ? हमको तो यह बड़ी भारी चिन्ता होगई, भला बताओ तो सही हमसे विदा होकर तुम दोनोंने क्या २ किया ?

चिदाभास—सुनो भाई ! जब तुम इधरको चले आये तो मैं और पद्मपाद दोनों गवैये बनकर उस राजाके मन्त्रीसे जाकर

मिले, पश्चात् गुरु गवैये बने और मैं उनका शिष्य बन गया था मन्त्रीसे भेंट होने पर अपने गुरु गवैयेकी खूब प्रशंसाकी और बातोंमें यह बात दिखाई कि-हमारे गुरुजीको धनकी कुछ इच्छा नहीं है, हाँ यह गाना उसीके सामने गाते हैं कि-जो इनके गुणों को भली प्रकार समझ सके, हम यहाँके राजाको बड़ा गुण-ग्राहक और गायनके मर्मको समझने वाला सुनकर आये हैं, इस कारण हमारे आनेका समाचार महाराजके पास पहुँचा दीजिये ?

हस्तामलक-अच्छा फिर क्या हुआ ?

चिदाभास-फिर वह परमचतुर मन्त्री हमारा पूर्ण सन्मान करके और हमको एक उत्तम स्थानमें ठहराकर हमारे आरामके लिये एक सेवकको छोड गया और महाराजको खबर पहुँचाने के लिये आप ही चला गया।

हस्तामलक-अच्छा फिर ?

चिदाभास-उस सेवकने हमारे भोजन आदिका उत्तम प्रबंध कर दिया, फिर मैं और मेरे गवैये गुरु भोजन करनेको बैठे, इतने ही में मन्त्री भी झपटा हुआ आया और कहने लगा महाराज अब ही तुम्हारा गाना सुनना चाहते हैं सो मेरे साथ चलिये, उसी समय हम तयार होगये और मैंने कन्धे पर बीणा रखली तथा मन्त्रीके साथ उस राजाके रणवासमेंको होकर बडे दिवानखानेमें जापहुँचे और बैठकर अपना साज सम्हालने लगे

हस्तामलक-[बडे उत्कंठित होकर] फिर क्या हुआ ?

चिदाभास-मित्रों ! उस स्थानकी शोभाको देखकर मेरे तो नेत्र चौंधा गये, वह सारा महल सोनेका था और उस पर भी हीरा, पन्ना मोती आदि नौरत्नोंके जडावका बारीक काम हो रहा था, उस अठपैलू बने हुए दिवानखानेमें रत्नजडी सैंकडों सोनेकी कुरसियें घेरा देकर बिछाई हुई थीं और उनके बीच

में सबसे ऊँचा एक राजसिंहासन लगा हुआ था, मन्त्रीने हम को उसीके सामने जाकर बैठाला था कि-इतने ही में और भी सैंकडों गवैये आगये, उनमेंसे कोई सारंगी, कोई सितार, कोई बीन और कोई जलतरंग, इस प्रकार अनेकों बाजे निकालकर सबका एक स्वर मिला लिया और हमसे भी हमारी वीणा उन ही बाजोंके साथ मिला लेनेको कहा ।

हस्तामलक-अच्छा फिर क्या हुआ ?

चिदाभास-तब मेरी तो पोल खुलने लगी, क्योंकि-वीणा को कन्धे पर धर लेनेके सिवाय यहाँ तो और कुछ आता ही नहीं था और मैं यह भी समझ रहा था कि-मेरे गुरु भी कुछ अधिक नहीं जानते हैं परन्तु मेरे गवैये गुरूने बडी गम्भीरताके साथ मुझसे वीणा लेकर कुछ खुंटियें ऐंठीं और कुछ एक बंधन ऊपर नीचेको सरकाये, बात यह है सरसरी रीति पर वीणाको मिला दिया, इतने ही में एक साथ दीवानखानेके सामनेका द्वार खुला ।

हस्तामलक-[बडी उत्कंठासे] अच्छा तो फिर क्या हुआ ?

चिदाभास-उस द्वारमेंको, रत्नजटित गहनोंसे लदी हुई और एकसी साडियें पहिने हुए एक सहस्र तरुणी दासियें आकर जो सौ आसन बिछरहे थे उनके चारों ओर खडी होगईं ।

हस्तामलक-फिर क्या हुआ ?

चिदाभास-उसके अनन्तर, जैसे वसन्त ऋतुमें समस्त हथनियोंके साथ गजराज आकर सरोवरमें प्रवेश करता है तिसी प्रकार वह राजा अपनी सौ रानियोंके साथ आया और सबसे ऊँचे सिंहासन पर बैठ गया फिर वह सब रानियें भी चारों ओर जो सौ आसन लगे हुए थे उन पर क्रमसे बैठ गईं, इतने में ही जो पैरों तक जरीका चोगा पहर रहा था और जिसके

हाथमें सोनेकी छडी थी ऐसे बूढ़े चोबदारने आकर हमारे गुरु जीसे गान प्रारम्भ करनेको कहा।

हस्तामलक-अच्छा फिर ?

चिदाभास-उस समय मैं तो घबडा गया, क्योंकि मुझे यह निश्चय नहीं था कि-मेरे गुरु गानेमें चतुर हैं, और मैं तो यह भाँपने लगा कि यहाँसे भागते समय किस द्वारसे सुभीता रहेगा परन्तु पद्मपादजीने जो वीणा लेकर गानका आरम्भ किया तो एक बडा ही उत्तम पद गाया, भौंरेको लक्ष्य करके उस पदका यह अर्थ था कि तुम कौन हो ? तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है ? तुम जिनको आज्ञा देकर इधर आये थे वह तुम्हारे वियोगसे व्याकुल होकर प्राण देनेको उद्यत होरहे हैं। पद्मपादजीका यह पद समाप्त होते राजाको स्मरण आगया और उसी समय नेत्र घुमा कर उस बड़े भारी सिंहासनपरसे वह राजा साहब नीचे गिरपड़े।

हस्तामलक-(आनन्दित होकर) वाह ! वाह ! अच्छा फिर क्या हुआ ?

चिदाभास-उस समय सारे दिवानखानेमें हाहाकार मचगया सब रानियें राजाके प्राणहीन शरीरको लिपट २ कर विलाप करने लगीं यह काम गवैयेका है, देखते क्या हो, उसको पकड़ो इतना शब्द कानमें पड़तेही, अब यहाँ रहे तो बड़ी बढ़िया बिदायगी मिलेगी इस भयसे गवैये गुरुको इशारा करके मैं तो योगशक्तिसे सूक्ष्मरूप धार अभी तुम्हारे पास आया हूँ परन्तु अभी तक पद्मपादजी न जाने क्यों नहीं आये ?

हस्तामलक-(घबड़ाकर) कहीं पद्मपादजी उन लोगोंके कोप देवताकी भेट तो नहीं होगये ? हां ! अब गुरुजी अपने पूर्व शरीरमें आवेंगे और जिसने इतना साहस करके अपनेको पूर्व का स्मरण कराया, वह बिचारा अपने प्राणोंसे भी गया ऐसा देखें सुनेंगे तो उनको बड़ा कष्ट होगा ! अब हम कैसी करें ?

चिदाभास-इतने न घबड़ाओ, प्रायः वह अब आते ही होंगे जब उनके ऊपर गुरु महाराजकी कृपा है तो किसकी शक्ति है जो उनका बाल बाँका भी करसके ?

इतने हीमें परदेके भीतर बड़े जोरसे नारायण शब्दकी ध्वनि होती है तब सब ही आनन्दित होकर नारायण शब्द की गुंजार करते हैं इसके अनन्तर पद्मपादजी आते हैं ।

पद्मपाद-मित्रों ! उधरका सब वृत्तान्त तो तुमने चिदाभासाचार्यजीसे सुन ही लिया होगा ?

हस्तामलक-हाँ हाँ ! सुन लिया परन्तु आपके आनेमें जो विलम्ब हुआ, इसकी हमको बड़ी चिंता होरही थी ।

पद्मपाद-अब कोलाहल न करो, गुरु महाराजकी सवारी अपने पूर्व शरीरमें आने वाली है ।

सब लोग श्री शंकराचार्यजी के शरीर की ओर को दृष्टि लगाते हैं इतने ही में धीरे धीरे प्राण-संचार होकर श्रीशङ्कराचार्यजी उठ कर बैठे होते हैं उसी समय सब शिष्य नारायण २ शब्दकी ध्वनिसे गुफाको गुंजारते हैं।

शंकराचार्य-(बड़े आनन्दके साथ) शिष्यों ! विषयोंका मोह बडा कठिन है जिसने मुझको भी भुलावेमें डाल दिया, इस कारण तुमको बड़ा कष्ट हुआ होगा ! अस्तु; अब देर न करो मण्डनमिश्र हमारी बाट देख रहे होंगे इसलिये उधर चलें और सरस्वतीको उत्तर देकर मण्डनमिश्रको संन्यासी करें बस काम बनजायगा, चलो तो सब ! (ऐसा कहकर नारायण नारायण कहते हुए सब जाते हैं) ।

❀ सप्तम दृश्य ❀

[माहिष्मती नगरीमें मंडनमिश्रका घर]

(तदनंतर मण्डनमिश्र और सरस्वतीका आगमन)

सरस्वती-(हाथ जोड़कर) महाराज ! जिस दिनसे आपको उस संन्यासीने परास्त किया है उस दिनसे आप मेरे साथ

पहिलेकी समान चित्तसे बातें तक नहीं करते हो और न आप का मन ही पहिलेकी समान भोगविलासमें जमता है तथा अपने परमप्रिय कर्मकाण्डमें भी आपकी रुचि नहीं है, एकसाथ ऐसा क्यों होगया ?

मण्डनमिश्र -(हँसकर) प्रिये ! जिसको सब तत्त्वोंका पता लगजाता है वह पुरुष सांसारिक मनुष्योंकी दृष्टिमें पागलसा दीखने लगता है, इसमें आश्चर्य नहीं है। जिन दयालु गुरुने मुझको ऐसा ज्ञान दिया है उनके लौटकर आनेकी अवधि टल-गई इस कारण मेरा ध्यान उधर ही पड़ा है।

सरस्वती-(डरती हुई) प्राणनाथ ! क्या आपने पहिले जो संन्यास लेनेका निश्चय किया था वह अभी ज्योंका त्यों बना है?

मण्डनमिश्र-इसमें क्या सन्देह है? प्रिये! ऐसे सद्गुरुके मुख से निकले ज्ञानामृतको पीकर भी क्या मैं नाशवान् इन्द्रियोंसे झूठे कल्पना कियेहुये संसारमेंके मिथ्यासुखोंके लिये, लुभियाऊँगा?

इतने हीमें परदेके भीतर नारायण शब्दकी ध्वनि होती है।

सरस्वती-(उचककर) अरेरे ! मेरे और मेरे पतिके सम्बन्ध को तोडने वाला सत्यानाशी संन्यासी आगया !

(तदनन्तर सब शिष्यों सहित श्रीशङ्कराचार्यजी आते हैं और सरस्वती सहित मण्डनमिश्र उनको प्रणाम करते हैं)

शंकराचार्य-(सरस्वतीकी ओरको मुख करके) सरस्वती ! अब तुमको कामशास्त्रमें जो कुछ प्रश्न करने हों करले ।

सरस्वती-[फिर प्रणाम करके] महाराज ! मैंने सब उत्तर पालिये भगवन् ! आप तो सब विद्याओंके समुद्र हैं, इस बात को मैं जानती थी, परन्तु स्त्रियोंको पतिके लिये कैसा समझना चाहिये, इतना दिखानेके लिये ही मैंने वह विवाद किया था आपकी विद्याकी परीक्षा करनेको मैंने वह प्रश्न नहीं किया था। हे आचार्य ! यह मेरे पति आपके अधीन हैं, आप

अब अपनी इच्छानुसार इनको संन्यास दीजिये, मैं भी अब सत्यलोकको जाती हूँ, क्योंकि 'मृत्युलोकमें जन्म ले' ऐसा शाप होनेके अनन्तर 'तेरे पतिको शास्त्रार्थमें जीत कर जब कोई संन्यास देगा तब तू अपने पहिले रूपको पाकर इस पदपर आवेगी' इस प्रकार शापका उद्धार भी होगया था इस कारण हे जगद्गुरो ! अब मुझको जानेकी आज्ञा दीजिये [ऐसा कहकर फिर प्रणाम करती है] ।

शंकराचार्य-(बड़े आनन्दके साथ) सरस्वती ! मैं तुझको सत्यलोकमें जानेके लिये आज्ञा नहीं देसकता, क्योंकि मेरे मुख्य मठ ऋष्यशृंगपुर और द्वारकामें होंगे तहाँ तेरा पूर्ण निवास जबतक यह अद्वैतमत जगमें रहे तबतक होना चाहिये और शिष्यपरम्परासे उन पीठोंपर जो जो वैठेंगे उनको पूर्ण विद्वान् बनानेके लिये तुझको दृष्टि रखना चाहिये।

सरस्वती-महाराज ! आपकी आज्ञाका उल्लंघन करनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, इस कारण अब मैं ऋष्यशृंगपुर और द्वारकापुरीमें निवास करनेके लिये जाती हूँ आज्ञा दीजिये ?

शंकराचार्य हे देवि ! जो जो मेरे शिष्य इस सत्य अद्वैतमार्गको चलावेंगे वह सब बहुत सावधानीके साथ तेरी सेवा और आराधना करेंगे तथा तुझको बहुत ही सन्मान देंगे ।

सरस्वती-अब मैं अन्तर्धान होती हूँ [ऐसा कहकर योगशक्तिसे तहाँ ही अदृश्य होगई] ।

मण्डनमिश्र-[शंकराचार्यजीके चरणोंमें मस्तक रखकर] हे सद्गुरो ! अब मुझको संन्यास देकर पवित्र कीजिये ।

शङ्कराचार्य-[प्रसन्न होकर] हाँ ठीक है ! अब यही करना चाहिये [चिदाभासजीकी ओरको फिरकर] चिदाभास ! तुम मण्डनमिश्रको लेकर बस चलो, इनका मुण्डन आदि सब विधि करना तब तक मैं भी आता हूँ ।

चिदाभास—जो आज्ञा महाराजकी (ऐसा कह कर मण्डन-मिश्रके साथ जाते हैं)

शंकराचार्य-(पद्मपादकी ओरको देखकर) पद्मपाद ! एक तो बड़ा भारी कार्य होगया, क्योंकि-सकल कर्म काण्डके सार्व-भौम मंडनमिश्रको जीतकर शिष्य कर ही लिया अब मेरी इच्छा है कि-दिग्विजयके लिये चलें ।

पद्मपाद-महाराज ! इसमें अब देर भी क्या है ? मण्डनमिश्र को शिष्य करके साथ ले चलिये बस होगया ।

शंकराचार्य-इतने ही से काम नहीं चलेगा, राजा सुधन्वाकी सहायता बिना पूरा२ दिग्विजय नहीं होसकता, क्योंकि-कोई२ पुरुष ऐसे हठी होते हैं कि-परास्त होजाने पर भी अपनी ही अलापे जाते हैं, यदि राजा सुधन्वा साथ होगा तो वह लोग राजदण्डके भयसे उद्दण्डपना नहीं कर सकेंगे, इस कारण तुम राजा सुधन्वाके पास जाओ और उसको मेरी ओरसे सूचित करो कि-वह सेना सहित हमारे साथ चले, तब तक मैं यहाँ ही हूँ, जहाँ तक हो शीघ्र ही इस कार्यसे निबट कर आना ।

पद्मपाद-जो आज्ञा (ऐसा कहकर जाते हैं)

शंकराचार्य—(और शिष्योंसे) चलो अब मण्डनमिश्रको संन्यास दीक्षा देनेके लिये चलें (ऐसा कहकर नारायण२ कहते हुए सब जाते हैं)

❋ अष्टम दृश्य ❋

(केरल देश- शङ्कराचार्यजीका जन्मस्थान)

(आसन्नमरण शय्या पर लेटी हुई शंकराचार्यजीकी माता विशिष्टाका प्रवेश)

विशिष्टा-[लेटी हुई बड़ी दुःखित होकर] परमेश्वर ! दीन-दयालो ! जिससे अपना शरीर तक नहीं सम्हाला जाता ऐसी मुझसी अनाथ अबलाको जीवित रखना आपका बड़ा अन्याय

है, भगवन् ! सब जगत्‌मेंके अज्ञानरूप अन्धकारका नाश करने के लिये ज्ञानका सूर्यरूप पुत्र मैंने पाया, तिस पर भी अन्तकाल में कोई मेरे मुखमें पानी डालनेवाला तक नहीं ? आहा रे पुत्र! तेरे गुणोंका मैं कहाँ तक बखान करूँ ? यह मेरे ही दुर्भाग्यकी बात है जो अधिक दिनों मुझको तेरा संग न मिला, न जाने अब इस समय तू कहाँ होगा ?, मेरा अन्तकाल समीप आगया बेटा ! अब मेरी यही इच्छा है कि-एक बार तेरे चन्द्रमुखको देखकर प्राणोंको छोड़ दूँ, मुझको और दूसरी कुछ चाहना नहीं है।

(इतने ही में योगमार्गसे शंकराचार्यजी प्रवेश करते हैं)

शंकराचार्य-[माताकी शय्याके पास जाकर दुःखसे] अरेरे! जिसने नौ महीने तक इस शरीरके बोझेको उदरमें रखकर तथा आगेको और भी अनेकों दुःख झेलकर इसका पालन किया था वह मेरी माता यही अकेली इस कंबल पर पड़ी है क्या ? [फिर मातासे] मैया ! यह तेरा पुत्र संन्यासी शंकर आया है एकबार नेत्र खोलकर इसकी ओरको देख।

विशिष्टा-[नेत्र खोलकर देखती हुई] बेटा शंकर ! कबका आया है ? बेटा ! आनन्द तो है ?

शंकराचार्य-मैया ! जिसका कभी नाश हो ही नहीं सकता उसका सदा कुशल ही है। परन्तु मातः ! तेरी यह दशा होरही है ! और तेरे पास हमारे भाई बन्धुओंमेंसे कोई भी नहीं इसका क्या कारण है ?

विशिष्टा-बेटा ! जिसको पेटके पुत्रने ही छोड दिया, उसको फिर भाई बन्धुओंसेमें भी कौन बूझता है? वह केवल एक बार पूर्व पुरुषोंकी सब सम्पत्ति लेनेको आये थे, उसके अनन्तर किसीने आकर मुख भी नहीं दिखाया, कुछ बात नहीं है बेटा ! जब अपने प्रारब्धमें ही दुःख भोग लिखा है तो दूसरोंको उसका

दोष देनेसे कौन फल है।

शंकराचार्य-मैया! मैं तो सब धन सम्पत्ति उनको सौंप कर तेरी रक्षाका पूर्ण ध्यान रखनेको कह गया था, तिसपर भी तेरे साथ उन्होंने ऐसा व्यवहार किया।

विशिष्टा- बेटा! अब वह भाडमें जायँ, उस बातका इस समय मैं स्मरण करना भी नहीं चाहती, परन्तु अब अन्तमें तुझसे इतना कहना है कि-बेटा! जैसे तू सब जगत्का उद्धार करता है तैसे इस अपनी माताको भी सांसारिकचक्रसे छुटानेकी कृपा कर, बस मैंने सब कुछ पालिया।

शंकराचार्य- बहुत अच्छा, मातः! अब तू नेत्र मूँद, तो तुझ को गणों सहित विमान दीखेगा और वह गण तुझको विमान में बैठा कर लेजायँगे, अब तू अपने मनमेंसे सब वासनाओंको दूर करके एक शिवजीका ध्यान कर, क्योंकि-यह तेरा अन्तकाल है।

विशिष्टा-[नेत्र मूँदती है और उसको विमान दीखता है उसी समय घबड़ा कर फिर आँखें खोलती हुई] बेटा शंकर! उस विमानमें जाते हुए मुझको बडा भय लगता है, क्योंकि-उसमें तो सब गण पिशाच ही हैं, मुझे तू बैकुण्ठ पहुँचा, क्यों कि-भगवान् नारायण मुझको बड़े प्रिय लगते हैं।

शंकराचार्य-[कुछ हँसकर] अच्छा मातः! फिर नेत्र मूँदले अब तुझको विष्णु भगवान्के गणोंसे युक्त विमान दीखेगा।

विशिष्टा-फिर नेत्र मूँदती है और विष्णु भगवान्के यहाँका विमान दीखता है उस समय बडी आनन्दित होकर] आहाहा! मैं धन्य हूँ! इस विमानका क्या वर्णन करूँ? इसपर जो विष्णु भगवान्के गण हैं, वह सब चार भुजा वाले, पीताम्बर धारी हाथोंमें शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लिये, मस्तक पर किरीट और गलेमें वैजयन्ती माला पहिरे हुए हैं, तो क्या अब मैं इसी विमान पर

बैठकर जाऊँगी ? बेटा शंकर ! ले मैं जाती हूँ, मेरे ऊपर पूर्ण कृपा रखना. पुत्र ! तू परम विरक्त संन्यासी होते हुए भी इस अनाथ माता पर कृपा करनेको आया और मुझे वैकुण्ठलोकको भेज दिया, इसका मैं बडा उपकार मानती हूँ, अच्छा तो मैं अब चली-राम-राम-राम-

[प्राण छोडती है]

शंकराचार्य-[नेत्रोंमें जल लाकर] अरे ! मैं इतना विरक्त हूँ, दीखने वाले सब संसारके पसारेको नाशवान् समझता हूँ, इसके सिवाय मैं इतने दिनोंसे इसकी ममतारूप फांसी से भी अलग था, तब भी इस माताके वियोगसे मेरी छाती दहली जाती है, फिर संसारमें मग्न रहने वाले पुरुषोंको न जाने ऐसे अवसर पर कैसा कष्ट होता होगा!?अच्छा अब मैं कुटुम्बियोंसे इस की प्रेतक्रियाके लिये कहूँ [ऐसा कहकर परदेकी ओरको मुख करके ऊँचे स्वरसे पुकारते हुए] हे कुटुम्बियो ! यह शिवगुरु महाराजकी स्त्री परम पतिव्रता श्रीमती विशिष्टाका मरण होगया है, अब इसकी प्रेत क्रिया करनेके लिये तुम शीघ्र आओ ।

(तदनन्तर परदेमेंसे शब्द आया कि-अरे दुष्ट अधम ! तूने हमारे कुलमें उत्पन्न हो दोनों लोकके विरुद्ध मतको स्वीकार करके इस विशुद्ध वंशको कलंक लगाया है, इसकारण तुझको उत्पन्न करने वाली यह स्त्री बड़ी पापिन है इस लिये इसकी अन्तक्रिया करनेके लिये हम कोई नहीं आवेंगे तेरे चित्त में आवे सो कर)

शंकराचार्य-[सुनकर क्रोधसे] अरे भाई ! यदि कोई अनाथ मरजाता है तो उसकी प्रेतक्रिया करनेका भार सबके ही ऊपर होता है और यह तो तुम्हारे गोत्रकी है फिर इसके विषयमें ऐसा उत्तर क्यों ? और तुमको ऐसा द्वेष है तो मुझे अग्नि तो ला दो, यद्यपि मुझको अधिकार नहीं है, क्योंकि-मैं संन्यासी

हूँ, तथापि अगत्या मैं अपनी माताके प्रेतकी दाहक्रिया करूँगा। (फिर परदेके भीतरसे शब्द आया कि-अरे नीच ! ऐसी अपवित्र स्त्रीका दाह करनेके लिये हम अपनी अग्नि कभी नहीं देंगे, यदि तेरी इच्छा हो तो किसी शूद्रके यहाँसे अग्नि लाकर दाह करदे)

शंकराचार्य-(सुनकर) हर ! हर !! परमेश्वर !!! क्या यह भी मनुष्य हैं [फिर परदेकी ओरको मुख करके] अरे ! तुम्हारे ब्राह्मणपन पर दुर्दशा आगई है उसमें तुम क्या करोगे ? अपने आपसे ही] अब माताका मृतक शरीर आँगनमें लाकर और घरमेंके काष्ठोंकी चिता बनाकर उसपर धरेदेता हूँ और इसकी ही दाहिनी भुजाको मथकर अग्नि उत्पन्न कर घरके भीतरही दाह करे देता हूँ [ऐसा कहकर माताके शरीरको भीतर लेजाते हैं और फिर बाहर आकर बड़े स्वरसे] अरे बान्धवों ! अब मेरा कहना सुनो आजसे तुम्हारा स्मशान तुम्हारे घरोंमें ही होगा और तुम सब वेदसे पतित होकर शूद्रकी समान आचरण करोगे तथा तुमको संस्कृत अग्नि कभी नहीं मिलेगा, सार यह है कि-यहाँके रहने वाले तुम सब ब्राह्मण इस पातकके कारण, आजसे ब्राह्मणपनेसे हीन होजाओगे, मैं तुमको यह शाप देता हूँ, [फिर अपने आपसे ही] अब यहां रहकर क्या करना है? अपने कार्यके लिये जाऊँ [ऐसा कहकर जाते हैं]

❀ नवम-दृश्य ❀

(काशीपुरीकी स्मशान भूमि]

'तदनन्तर तुण्डी नामक शिवजीका गण आता है'

तुण्डी-(अपने आप ही) मुझको पार्वती माताकी आज्ञा है कि मृत्युलोकमें जिस जिस प्रकार श्रीशंकराचार्यजीका चरित्र हो वह सब कैलासमें आकर निवेदन कर, उस आज्ञाको मस्तक पर धर यहाँ आकर मुझको जितना मालूम हुआ वह तो मैंने जाकर निवेदन कर ही दिया और आगेका वृत्तान्त जाननेके

लिये मैंने अपने मित्र भृंगीको भेजा था, तथा उसका और मेरा इस काशीपुरीके मरघटमें मिलनेका संकेत हुआ था, सो मैं तो यहाँ आगया परन्तु मेरा मित्र न जाने अभी तक क्यों नहीं आया ?

इतने हीमें भृंगी नामक शिवजीका गण आता है

भृंगी-(इधर उधरको घूमते हुए तुण्डीको देखकर) अरे ! यह मेरा परम मित्र तुंडी संकेतके अनुसार यहाँ आगया अच्छा अब इससे बात चीत करूँ, (पास जाकर) मित्र तुण्डी ! नमो नमः ।

तुंडी-(उसको देखकर प्रसन्न होता हुआ) नमो नमः, क्यों मित्र ! भृंगी सब कुशल तो है ?

भृङ्गी-सखे ! परमदयालु भगवान्‌के चरितरूपी अमृतको पीते हुए अमंगल हो ही कैसे सकता है ? क्या कहूँ मित्र ! उन सद्‌गुरुकी लीलाको देखते हुए वर्षों भी क्षणभरकी समान प्रतीत होते हैं ।

तुण्डी-अच्छा मित्र ! इधरका समाचार तो सुनाओ, जिससे कि अब माता पार्वतीजीके पास जाकर सुनानेमें सुभीता रहे ।

भृङ्गी-पहिले यह तो बताओ कि तुम पार्वतीजीको कहाँ तकका समाचार सुनाचुके हो ? तब मैं आगेके चरित्रके वर्णन करनेका प्रारम्भ करूँ ।

तुण्डी-श्रीशंकराचार्यजीने चित्तमें दिग्विजय करनेका निश्चय करके राजा सुधन्वाको बुलवाभेजा, यहाँ तकका तो सब समाचार मैं माता पार्वतीजीको सुना चुका हूँ इससे आगे जो कुछ हुआ हो वही सुनाओ, तो ठीक होगा ।

भृङ्गी-अच्छा तो सुनो श्रीशंकराचार्यजी अपनी माताको वैकुण्ठ पठाकर, मण्डनमिश्र आदि सब शिष्योंके साथ सेना सहित राजा सुधन्वाको संगलिये बड़े ठाठके साथ दिग्विजय करनेको निकले और पहिले श्रीरामेश्वरको जाते हुए मार्गमें कुछ

और शाक्त मिले उनके मतकी दूषित बातोंका खण्डन करके रामनाथजी पहुँचे, तहाँसे चौल-विड-पांड्य आदि देशोंमें असन्मतोंको परास्त करते हुए कांचीपुरीमें गये और तहाँके सब पण्डितोंका गर्व नष्ट करके वैकुण्ठाचलपर गये और तहाँ पुरुषोंको अपने वश करतेहुए कर्णाटक देशमें जापहुँचे।

तुण्डी–फिर क्या हुआ?

भृङ्गी–तहाँ भैरवकी दीक्षा धारने वाला एक क्रकच नामक घोर कापालिक अपने साथियोंके बडे भारी समूहके साथ रहता था, वह श्रीशंकराचार्यजीके सन्मुख आकर दुर्वचन कहने लगा तब तो राजा सुधन्वाको ोप आगया, और उसने तिस दुष्ट को सभामेंसे निकलवा दिया, वह धूर्त इस प्रकार अपमान होते ही अपने साथके सब कापालिकोंको लाकर युद्ध करनेको उद्यत हुआ

तुण्डी–(चकित होकर) ओहो! उस दुष्टने ऐसा साहस किया? अच्छा तो फिर?

भृङ्गी–तदनन्तर सुधन्वाकी सेनाके साथ उस कापालिकका युद्ध होनेपर कुछ कापालिकोंने श्रीशंकराचार्यजीके धर्ममठमें आनन्दके साथ भोजन करके भगवद्भजनमें समयको बिताने वाले ब्राह्मणोंपर चाल खेल उनमेंसे अनेकोंको यमपुरी पहुँचा दिया उस समयकी दशा क्या कहूँ! जिधर तिधर हाहाकार होने लगा सब ब्राह्मण नंगे उघाड़े रोते हुए श्रीशंकराचार्यके पास आकर जीवदान माँगने लगे।

तुण्डी–ओहो! उन चाण्डालोंने तो बडा ही अनर्थ किया हा! अच्छा फिर?

भृङ्गी फिर उन कृपासिंधुके चित्तपर पहिले तो कृपाकी लहर आई और पीछे उन दुष्टोंके आचरणसे अत्यन्त दुःखित होकर, महाराज अपने आप युद्धभूमिमें आये और एक हुंकार

शब्दमें ही सब कापालिकोंको भस्म कर डाला, उससमय केवल वह अकेला क्रकच ही बाकी रहगया, तब अपनी मन्त्रशक्तिसे श्रीभैरवदेवको प्रकट करके उनसे-शङ्कराचार्यजीका नाश करने के लिये प्रार्थना की।

तुण्डी-(घबड़ाकर) फिर क्या हुआ ? महाराज उस संकट से छूटे या नहीं ?

भृङ्गी-मित्र ! घबडाओ मत, वह भैरवदेव श्रीशंकरार्यजीकी ओरको देखकर हँसे और फिर उस दुष्ट क्रकचकी ओरको प्रलयकालकी अग्निकी समान लपटें छोडने वाली दृष्टिसे देख कर कहा कि अरे मदान्ध ! क्या मेरेही अवतार भगवान् शंकराचार्यका नाश करनेके लिये कहता है ? अच्छा तो अब मैं तुझको ही यहाँसे कपूर किये देता हूँ, ऐसा कहकर उन उग्र भैरवदेवने जैसे मतवाला हाथी अपनी सूँडसे कमलके फूलको सहज में ही तोड़ लेता है तैसे ही उस नीच कापालिकके मस्तकरूप कमलको धड़से अलग करदिया और भगवान् शंकराचार्यजीकी जय बोलते हुए वह भैरवदेव अन्तर्धान होगये।

तुण्डी-[प्रसन्न होकर] मित्र ! अब मेरे होश ठिकाने आये अच्छा फिर क्या हुआ ?

भृङ्गी-फिर भगवान् शंकराचार्यजी पश्चिमसे समुद्रकी ओर को फिर कर गोकर्णक्षेत्रमें आये, तहाँ पण्डित नीलकण्ठके साथ शास्त्रार्थ करके उनको जीतकर द्वारकापुरीको चले गये, यहां कितने ही पाखण्डी वैष्णव थे उनको अपने वशमें करके अवन्ती नगरीमें आपहुँचे, तहाँ पण्डित भास्करके साथ बडा भारी शास्त्रार्थ करके उनको भी अपने चरणोंमें नवाकर छोड़ दिया, फिर एक अभिनव गुप्त नाम वाले बडे भारी मन्त्रशास्त्र आये उनके गर्वका भी चूरा करके, उत्तर दिशामें दिग्विजय करनेको गये।

तुण्डी-अच्छा फिर क्या हुआ ?

भृङ्गी-फिर कोशल देश, अंगदेश आदिके असत् मतोंको जीतकर गौडदेशमें आये तहाँ मीमांसाशास्त्रके पारगामी पण्डित मुरारिमिश्रको जीता।

तुण्डी-मित्र ! तुम धन्य हो उन परम मङ्गलमूर्त्तिके दिग्विजय चरित्रको देखकर पवित्र होगये हो, अच्छा फिर क्या हुआ ?

भृङ्गी-फिर शंकराचार्यजीने अपने साथियोंके सहित उत्तर दिशामें जाकर जिन अभिनवगुप्तको परास्त किया था उन्होंने अपनी मन्त्रशक्तिसे शंकराचार्यजीपर एक कृत्या [मारणकी विधि] की उसके कारण महाराजके शरीरमें बडा दुःखदायक भगन्दर नामक रोग उत्पन्न होगया।

तुण्डी-[घबडाकर] मित्र ! यह एक और नया संकट आया अच्छा फिर ?

भृङ्गी-फिर यद्यपि महाराज तो यही कहते रहे कि औषधि आदिकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह शरीर भोगका ही स्थान है, तथापि सब शिष्योंने और राजा सुधन्वाने अनेकों वैद्योंको बुलवाकर चिकित्सा करवाई, परन्तु रोगका निदान किसीसे भी न होसका; अन्तमें पद्मपादजीने अश्विनीकुमारोंका आवाहन करके उनको मूर्तिमान् बुलाया वह रोगकी परीक्षा करके यह रोग कृत्यासे उत्पन्न हुआ है ऐसा कह कर अन्तर्धान होगये।

तुण्डी-फिर क्या हुआ यह तो बता महाराजका उस रोग से छुटकारा हुआ या नहीं ?

भृङ्गी-तब तो पद्मपादजीको क्रोध आगया और उन्होंने अपने मन्त्रबलसे उस कृत्याको शान्त किया तब महाराज नीरोग हुए और उसी कृत्याके द्वारा उस दुष्ट अभिनवगुप्तका प्राणान्त होगया

तुण्डी-(प्रसन्न होकर) रोग शान्त होने पर फिर क्या हुआ?

भृङ्गी फिर एक दिन महाराज गंगाजीके तट पर बैठे अपने शिष्योंको उपनिषद् विद्याका उपदेश देरहे थे इतने ही में उनके परमगुरु भगवान् गौड़पादाचार्य आगये और शंकराचार्यजीके शारीरकभाष्य आदि सब ग्रन्थोंको देखकर परम प्रसन्न होते हुए चले गये फिर काश्मीरमें सरस्वतीका विद्याभद्रासन नामक पीठ है, जो उसके ऊपर बैठ सकेगा उसीका दिग्विजय पूरा समझा जायगा, तथा वहाँ बड़े २ धुरन्धर पण्डित भी हैं, इस बातको जहाँ तहाँ सुनकर भगवान् शंकराचार्य अपने शिष्यों सहित काश्मीरको चले गये।

तुण्डी–फिर क्या हुआ ?

भृङ्गी–उस काश्मीरके दक्षिण द्वार पर भगवान् शंकराचार्य जी पालकीमें बैठे हुए बड़ी धूमधामसे पहुँचे, काणाद, नैयायिक, सौगत, दैगम्बर, कर्मकाण्डी आदि अनेकों वादियोंने आकर श्रीशंकराचार्यजीसे प्रश्न किये उस समय उन सब प्रश्नों का उचित उत्तर भगवान् शंकराचार्यजीके देते ही यह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् साक्षात् ईश्वर ही हैं, इस बातका उन सबको निश्चय होगया और उन काश्मीरके निवासियोंने भगवान् शंकराचार्यजीका सत्यमत स्वीकार कर लिया तथा बड़े उत्साह के साथ महाराजको लेजाकर विद्याभद्रासन पीठ पर बैठानेकी ठहरी, शंकराचार्यजीके सन्मानके लिये दिनमें ही मसालें जला कर और महाराजकी पालकीको छत्र चँवर आदिसे शोभायमान करके अनेकों बाजोंका शब्द करते हुए ले चले यहाँ तक का चरित्र देखकर मैं आरहा हूँ अभी महाराजकी सवारी विद्याभद्रासन पर बैठानेके लिए बड़ी धूमसे जारही है।

तुण्डी–मित्र ! तो मैं यह समाचार माता पार्वतीजीको सुनाने के लिये कैलास पर जाता हूँ और तू भी अब आगेका चरित्र देखनेके लिये जा। ऐसा कहकर दोनों जाते हैं

दशम-दृश्य

काश्मीर।

[तदनंतर परदेमें अनेकों प्रकारके बाजे बजते हैं और वैतालिक (नकीब) का शब्द होता है-श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य-पदवाक्यप्रमाण पारावारपारीण-यमनियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहारध्यानधारणास-माध्यष्टांगयोगानुष्ठाननिष्ठतपश्चक्रवर्त्यनाद्यविच्छिन्नगुरुपरम्पराप्रा-प्तषड्दर्शनसंस्थापनाचार्य-व्याख्यानसिंहासनधीश्वर-सकल निगमागमसारहृदय-सांख्यत्रयप्रतिपादक- वैदिकमार्ग प्रवर्त्तक-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-नास्तिकद्वैतध्वांतकदम्ब-ज्ञानमार्तण्ड-बोधाब्जविभाकर-श्रीराजाधिराज-विद्याशंकराचार्य-श्रीजगद्गुरुमहाराज]

तदनन्तर पालकी में बैठे हुए श्रीशंकराचार्यजी, आगे २ विरुदावली पढनेवाला नकीब पालकीके साथ चलनेवाले शंकराचार्यजी के सब शिष्य चतुरंगिनी सेनासहित हाथमें श्री-शंकराचार्यजीकी चरणपादुका लिये राजा सुधन्वा और नगरके सब पण्डित ते हैं

नकीब-(फिर पहिले की समान श्रीमत्परमहंस इत्यादि पढता है)

राजा सुधन्वा-(पालकीके पास जाकर) जगद्गुरुं महा-राज ! सरस्वतीका विद्याभद्रासन आगया, वह मन्दिर यही है, अब पालकीमेंसे उतरिये ।

[तदनन्तर नगरके पण्डित पालकीको नीचे रखते हैं और महाराज पद्म-पादजीका हाथ पकड़ कर बाहर आते हैं, इतनेमे ही राजा सुधन्वा, चरणपादुका आगे रखता है, उनको पहर कर महाराज चलने लगते हैं उस समय अनेकों बाजे बजते हैं और नकीब फिर वही विरुदावली पढता है]

शंकराचार्य–(विद्याभद्रासन के पास जाकर) पद्मपादजी जिस पीठ पर बैठने पर ही दिग्विजय समझा जाता है यह वही विद्याभद्रासन पीठ है क्या ?

पद्मपाद–श्रीमहाराज ! हाँ यही है वह पीठ, अब आप इस पर विराजें।

शंकराचार्य–बहुत अच्छा [ऐसा कह कर पद्मपादजीके हाथ का अवलम्बन किये हुए ऊपरको चढ़ते हैं, उसी समय आकाश में सरस्वतीका शब्द होता है]

हे
शङ्कराचार्य!
जो सर्वज्ञ और परम–
पवित्र होगा वही इस सिंहासन पर
बैठ सकता है, अब तुमको सर्वज्ञ कहने में
तो कोई सन्देह नहीं है क्यों कि—ब्रह्मदेव के अव-
तार मण्डन–मिश्र भी तुम्हारे शिष्य हो गये, परन्तु अभी
तुम परम–शुचि नहीं हो, क्यों कि—तुम ने संन्यासी
हो कर राजा अमरक की स्त्रियों के साथ
विलास किया है, इस कारण
तुम इस पर बठने के
योग्य नहीं
हो

शंकराचार्य–[सुनकर कोपसे] तेरे घमण्डको मैंने एक बार छोड़ दिया, अब फिर भी तू इस समय हमारे सिंहासन पर बैठनेमें विघ्न डालती है; अच्छा तुझको इसका भी उत्तर देता हूँ, सुन–हे वाग्देवते ! मैं जिस शरीरसे इस सिंहासन पर बैठता हूँ, यह मेरा शरीर पवित्र ही है और जिस शरीर से मैंने अमरक राजाकी रानियोंसे विलास किया था वह देह तो चितामें भस्म होगया, पवित्रता और अपवित्रताका आत्माके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं होता है केवल शरीरके

ही साथ होता है, देखो-जो पुरुष एक जन्ममें चाण्डाल जातिका होता है वही किन्हीं पुण्योंके प्रतापसे दूसरे जन्म में ब्राह्मण होजाता है, तो क्या वह पहिले जन्ममें चाण्डाल था इसकारण उसको दूसरे ब्राह्मणके जन्ममें भी वेदाधिकार नहीं होगा ? इसकारण मैं जिस शरीरसे इस समय इस विद्यापीठ पर चढ़ता हूँ मेरा यह शरीर परम पवित्र है फिर विघ्न क्यों किया जाता है? यदि ऐसा होने पर भी तुझे और कहना हो तो वह भी कथन कर।

(इसपर सरस्वती निरुत्तर होती है और श्री शंकराचार्यजी विद्यापीठ पर चढ़कर बैठते हैं उसी समय बाजोंका घनघोर शब्द होता है और आचार्यके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होती है तथा काश्मीरके सब पण्डित आकर श्री-शंकराचार्यजीका पूजन करते हैं)

राजा सुधन्वा-(आगे बढ़कर ऊपरको हाथ उठा ऊँचे स्वर से) सब लोग मेरे कथनको सुनें हे सभासदो! जिन देवाधिदेवने प्रथम भट्टपादजीके द्वारा जैनोंका पराजय करवाकर उन को निर्वीज करवाया और जिन्होंने अपनी इच्छाके बलसे इस भूमण्डलपर मण्डनमिश्र आदिके द्वारा कर्ममार्गकी प्रवृत्ति करवाई, फिर जिन्होंने शिवगुरु पिता और माता विशिष्टाके गर्भसे जन्म धारण कर अनेकों चमत्कार किये तथा जिन्होंने मायाका नाका रचकर मातासे संन्यास धारण करनेकी आज्ञा ली, तदनन्तर जिन्होंने श्रीगोविन्द पूज्यपादाचार्यसे संन्यास लेकर काशीपुरीमें साक्षात् विश्वनाथ भगवान्से दर्शन प्राप्त किया इसी प्रकार जिन्होंने मण्डनमिश्रसे अगाध शास्त्रार्थ करके सरस्वतीको जीतनेके लिये राजा अमरककी कायामें प्रवेश किया और फिर जिन्होंने सब दिशाओंके पंडितोंको जीत कर अपने वशमें कर लिया वही यह भगवान् कैलासपति इस समय इस

विद्यापद्मासन पर बैठे हुए तारागणोंके मध्यमें शरद् ऋतुके पूर्णचंद्रमाकी समान शोभायमान हैं (ऐसा कहकर सिंहासनके सामने साष्टांग प्रणाम करता है)

शंकराचार्य-(ऊँचे स्वरसे नारायण शब्दका उच्चारण करके) शिष्यो!आज मेरे इस अवतारका सब कार्य समाप्त होगया अब तुम सबको मेरी आज्ञा है कि चारों दिशाओंमें मेरे जो चार मठ होंगे उनमें रहते हुए तुम शिष्य प्रशिष्योंके द्वारा मेरे इस अद्वैतमार्ग को फैलाकर सब अधिकारियोंमें वैदिकमार्गका प्रचार करो और जो दुराचारमें प्रवृत्त हों उनको दण्ड देकर सन्मार्गका प्रचार करने वालोंपर अनुग्रह करो और यद्यपि संन्यासियोंको राजसी ऐश्वर्य निषिद्ध है तथापि सबोंपर प्रताप बैठानेके लिये तुम राजाओं की समान ठाठ रक्खो परन्तु उस राजसी ठाठसे आनन्द मान कर केवल आत्मानन्दमें ही निमग्न रहते हुए जगत्का उद्धार करो अब मेरी आयु भी थोड़ी ही शेष रही है इस कारण अब मैं हिमालयपर जाकर वहाँसे अपने कैलासधामको चला जाना चाहता हूँ (सुधन्वाको समीप बुलाकर) तुमने मेरे इस कार्यमें सहायता की है इसकारण तुम्हारा भी उद्धार होगया अब मेरी आज्ञाके अनुसार तुमको इन मेरे शिष्योंकी भी सहायता करनी चाहिये ।

राजा सुधन्वा-(फिर नमस्कार करके) महाराज ! आपने कृपा करके मेरी सेवाको स्वीकार किया, इसको मैं क्या कर सकता था जो कुछ कार्य मेरे द्वारा हुआ वह सब आपकी ही शक्तिसे हुआ, अब मैं श्रीमान्की आज्ञानुसार चारों दिशाओं में मठ स्थापित कराकर अद्वैत सम्प्रदायके अव्याहत चलनेका उद्योग करता रहूँगा ।

शङ्कराचार्य अच्छा, सबकाम तो ठीक हो ही गया अब तुम

सब अपना २ कार्य सिद्ध करनेके लिये जाओ और आजसे इस मेरे ऐश्वर्यको पद्मपादाचार्य भोगें (ऐसा होने पर सब लोग प्रणाम करके जाते हैं और तदनन्तर शंकराचार्यजी भी हिमालयको जाते हैं)।

एकादश-दृश्य

(हिमालय)

तदनन्तर नारायण नारायण शब्द करतेहुए श्रीशंकराचार्यजीका प्रवेश

शंकराचार्य-[अपने आप ही] मैंने विष्णु भगवान् और ब्रह्म देव आदि देवताओंसे जो प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार सब अवतार चरित्रको तो पूरा करही चुका, अब मुझको कोई कार्य करना शेष नहीं रहा, इस मृत्युलोकमें विधाता की कैसी सुंदर रचना है ! उनके इस अनन्त रहस्यका वर्णन कौन करसकता है, इन चर्मचक्षुओंसे मैंने चारों दिशाओंमें अनेकों नगर देखे, परन्तु यह हिमालयका दृश्य सब ही स्थानोंसे निराला है चारों ओरकी भूमि बरफसे ढकी हुई है, सूर्यका प्रकाश क्षीण होनेसे यह पता ही नहीं लगता कि इस समय दिनका मध्यान्ह है या सायंकाल होनेको है। हाँ ! आज तो मेरी आयुका अन्तिम दिन है, भगवान् व्यासजीकी आज्ञानुसार आज मेरे बत्तीस वर्ष पूरे होगये, अब इस मृत्युलोकमें वृथा ठहरना ठीक नहीं है इस कारण इस पवित्र तीर्थ केदारनाथकी गुफामें जाकर निजधाम को जाता हूँ [इतना कहकर नारायण शब्दकी ध्वनि करते हुए गुफामें प्रवेश करते हैं और गुफाके भीतरसे-

ॐमनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि नाहं, न श्रोत्रं न जिह्वा न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमी न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोहम् १
अहं प्राणसंज्ञो न पंचाविला मे, न तोयं न मे धातवो नैव कोशाः ॥
न वाक् पाणिपादौ न चोपस्थपायू, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोहम्
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःख, न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः

अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोहम्
न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ, मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावम् ॥
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षः, चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं
न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः, पिता नैव मे नैव माता न जन्म ॥
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यः-चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहं
अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो, विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि ।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्न बन्धः चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोहम् ॥

ॐ तत्सत्-ॐ तत्सत्-ॐ तत्सत् सत्यद्वैतम्-सत्यद्वैतम्-सत्यद्वैतम् । ऐसी ध्वनि सुनाई देकर आकाशमें गुञ्जारती हुई धीरे धीरे लीन होती है ॥

तदनन्तर ब्रह्माजी और इन्द्र आदि देवता आते हैं

इन्द्र-हे पितामह ब्रह्माजी ! श्रीशंकरके अवतारका कार्य समाप्त होगया इस कारण हम सब उनको परम सन्मानके साथ शिवलोकमें लिवा जानेके लिये आये हैं और वह भगवान् शंकर हिमालयकी इस गुफामें हैं यह बात हमने दिव्यदृष्टिसे जान ली है, सो अब आप ही आगे बढ़कर उनसे निवेदन करिये ॥

ब्रह्माजी-[गुफाके मुखपर जाकर हाथ जोड़े हुए] हे देवाधिदेव ! जगन्निवास ! पार्वतीपते ! आपने सब देवताओंको और सब लोकोंको सुख देनेके लिये मनुष्यरूप धारकर हमारी इच्छाको पूरा करते हुए सत्य सनातन धर्मका प्रचार किया, पृथ्वीके भारको घटाया जीवन्मुक्तिके मार्गका प्रकाश और असद्धर्मोंका नाश किया, जिससे कि वेद वेदांतआदिका उद्धार तुम्हारे निज कर्त्तव्यका पालन और धर्मराज्यमें सर्वत्र आपकी विजय हुई इस प्रकार अब आपको कुछ कार्य शेष नहीं रहा अतः अब निजधामको पधारिये । भगवन् ! आज वैशाख शुक्ला पूर्णिमा है और यही दिन आपका लौटकर कैलासको जानेका नियत हुआ था '